प्रथम सस्करण

मूल्य दो रुपये

क्षेमचन्द्र 'सुमन' सचालक सरस्वती सहकार, जी १० दिलशाद गार्डेन
दिल्ली-शाहदरा के लिए राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई द्वारा प्रकाशित एव गोपीनाथ सेठ द्वारा
नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित

निवेदन

स्वतन्त्र भारत के साहित्यिक विकास में भारत की भाषाओं तथा उपभाषाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज यह अत्यन्त खेद का विषय है कि हमारे देश का अधिकांश पठित जन-समुदाय अपनी प्रादेशिक और समृद्ध जनपदीय भाषाओं के साहित्य से सर्वथा अपरिचित है। कुछ दिन पूर्व हमने 'सरस्वती सहकार' संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा 'भारतीय साहित्य-परिचय' नामक एक पुस्तक-माला के प्रकाशन की योजना बनाई और इसके अन्तर्गत भारत की लगभग २७ भाषाओं और समृद्ध उपभाषाओं के साहित्यिक विकास की रूप-रेखा का परिचय देने वाली पुस्तकें प्रकाशित करने का पुनीत संकल्प किया। इस पुस्तक-माला का उद्देश्य हिन्दी-भाषी जनता को सभी भाषाओं की साहित्यिक गति-विधि से अवगत कराना है।

हर्ष का विषय है कि हमारी इस योजना का समस्त हिन्दी-जगत् ने उत्फुल्ल हृदय से स्वागत किया है। प्रस्तुत पुस्तक इस पुस्तक-माला का एक मनका है। आशा है हिन्दी जगत् हमारे इस प्रयास का हार्दिक स्वागत करेगा। इस प्रसंग में हम इस पुस्तक के लेखक प्रभाकर माचवे के हार्दिक आभारी हैं, जिन्होंने अपने व्यस्त जीवन में से कुछ अमूल्य क्षण निकालकर हमारे इस पावन यज्ञ में सहयोग दिया है। राजकमल प्रकाशन के सञ्चालकों को भूल जाना भी भारी कृतघ्नता होगी, जिनके सक्रिय सहयोग से हमारा यह स्वप्न साकार हो सका है।

बी १० दिलशाद गार्डन,
दिल्ली-शाहदरा

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

प्रस्तावना

'मराठी और उसका साहित्य' नामक पुस्तक आपके सामने है। कोई दो साल पहले यह तै हुआ था कि मराठी वाली किताब मैं लिखूँ। दिल्ली मे तब मैं रेडियो में था। समय और साधन नहीं थे कि मराठी-जैसे समृद्ध साहित्य की सब बातों को एक छोटी-सी किताब मे प्रस्तुत करने की सामग्री मैं जुटा पाता। इस बीच में एक साल मैं नागपुर रहा और इस पुस्तक की पांडु-लिपि दुबारा पूरी देखने और संशोधित करने का समय मुझे नहीं मिल पाया।

प्रस्तुत पुस्तक की कमजोरियों, दोषों और भूलों का मुझे ज्ञान है। कहीं असावधानी से पुनरुक्तियाँ हुई है, नाम गलत छप गए है, कहीं क्रम थोडा-सा इधर-उधर हुआ है। सभव है आधुनिक काल मे कुछ महत्त्व के लेखकों के नाम भी छुट गए हो। परन्तु इसका कुछ कारण तो पुस्तक के लघु आकार की सीमा है; और अधिक कारण मेरी अल्पज्ञता है। मैंने जहाँ तक सभव हो सका है मराठी साहित्य के इतिहासकारों (यथा भावे, भाटे, पागारकर, सरवटे, दांडेकर, देशपाडे, खानोलकर आदि) के ग्रथों को उलटा-पलटा है, और उनसे सामग्री लेने का यत्न किया है। भाषा वाले अंश मे श्री निरन्तर की पुस्तक से, 'महाराष्ट्र शब्द-कोश' की भूमिका से, श्री कृ० पा० कुलकर्णी के 'व्युत्पत्ति-कोश' की भूमिका से काफी मदद ली है। सत-काल मे सर्व श्री भावे पांगारकर, सरदार, फाटक, कोलते, आजगाँवकर मेरे पथ-निर्देशक रहे है। आधुनिक

काल मे तो न जाने कितने ग्रन्थ मेरे सहायक रहे हैं। उन सबके प्रति मैं कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूँ।

यों यह एक मराठी-भाषिक की हिन्दी मे सीधी लिखी हुई पुस्तक है। और इसका उद्देश्य, अपनी सीमाओं मे मराठी का परिचय हिन्दी-भाषिकों को कराना मात्र है। आशा है कि अशत भी यदि अपने उद्देश्य मे यह सफल हुई तो मैं आभारी होऊँगा। इस पुस्तक को पढ़कर हिन्दी-भाषिकों मे मराठी साहित्य के विषय मे और जानने की इच्छा बढ़े, वे हिन्दी के अलावा और भी भाषाएँ उत्तरोत्तर सीखें, हिन्दी-भाषी प्रदेश मे शीघ्र ही अन्य सभी भाषाओं को हिन्दी के माध्यम द्वारा सिखाने का प्रबध हो, यह कामना है। जानकारों से निवेदन करना चाहता हूँ कि मेरी किताब की भूलों से वे मुझे अवगत करायें, जिससे अगले संस्करण मे उन्हें सुधारा जा सके।

मैं भाई क्षेमचन्द्र 'सुमन' का भी आभार मानता हूँ कि उन्हीं-के निरन्तर कोंचते रहने से किताब आज इस शक्ल मे, जैसी भी हो, आपके सामने आ सकी है। अन्यथा, मैं आलसी और दीर्घ-सूत्री प्राणी हूँ। भूलों के लिए पुन क्षमा-याचना। हमारे देश मे एक लवणीकार 'प्रभाकर' नाम का कवि हो गया है। उसकी भाषा के बारे मे कहा गया था—'प्रभाकराची जडण-घडण खडबडीत म्हणायाला' (प्रभाकर की रचना ऊबड-खाबड़ है)। मैं उसीका वारिसदार हूँ।

नई दिल्ली

—प्रभाकर माचवे

क्रम

: १ :

महाराष्ट्र देश और संस्कृति

'रामायण' या 'महाभारत' में महाराष्ट्र का उल्लेख नहीं है। अशोक के शिला-शासनों में जो काठियावाड़ के गिरनार में, पूर्व समुद्र-तीर पर कटक प्रान्त के धौली में, गंजाम प्रान्त के जौगड में, हिमाचल के खलसी मे, अफगानिस्तान के शाहबाज गिरि में पाये गए हैं, 'रास्टिका, पेटेनिका., अपरान्ता' में धर्मोपदेशक भेजे जाने का उल्लेख मिलता है। अपरान्त उत्तर कोंकण देश था, शूर्परक उसकी राजधानी थी। गोदावरी नदी के आस-पास का प्रतिष्ठान या पैठण पेटेनिक था। 'पेरिप्लुस नामक यूनानी ग्रन्थ का कर्ता टालेमी इसी देश को 'पैठण' कहता है। 'रास्टिक' शायद महाराष्ट्र होगा। क्योंकि 'रट्टा' का अर्थ है रट्ट जाति के लोग। उनके हाथों में दक्षिण की प्रभु-सत्ता बहुत समय तक थी। इसी जाति की एक शाखा ने राट्टकूट नाम धारण किया। बेलगाम जिले के सुगन्धवर्ति (सौंदत्ती) में रट्ट उपनाम के रजवाड़ों का राज्य था। अशोक के तेरहवें शिलानुशासन में 'पेटोनिक' के साथ 'रास्टिक' का नाम नहीं है। उसके बदले भोज का नाम है। कुलाबा जिले में 'कुडे' ग्राम मे एक गुहा में शिला-लेख मिले हैं, जिनमें 'महाभोज' नाम अनेक बार आता है। जैसे भोज अपने को महाभोज कहलाने लगे उसी प्रकार से राष्ट्रिक (रट्टी, रट्ठी अथवा रट्ट) अपने को *महारट्ठी या महारट्ट* कहने लगे। जिस देश में वे

रहते थे उसे महाराष्ट्र मानने लगे।

'महावसो' नामक सिंहली लोगों की गाथा है, जो ईसा की पाँचवीं सदी में रचित मानी जाती है। उससे प्राचीन 'दीपवसो' नामक वैसे ही ग्रन्थ में मोग्गलिपुत्तो बौद्ध प्रचारक ने महारठ, अपरान्तक और वनवासी, इन तीन देशों में धर्म-प्रचारक भेजे थे ऐसा उल्लेख है। 'दीपवसो' में वनवासी नहीं हैं। भाजें, बेडसें और कालें की गुहाओ में कुछ शिला-लेखों में वास्तु उत्सर्ग करने वाले पुरुषों को 'महारठि' और स्त्रियों को 'महारठिनी' कहा गया है। यह ईसा की दूसरी शती का उल्लेख है। यहाँ 'महारठी' शब्द को बड़े योद्धा के अर्थ में लिया गया है।

जो प्राचीन प्राकृत भाषाएँ हैं उनमें महाराष्ट्री प्रधान हैं। मार्कण्डेय के 'प्राकृतसर्वस्व' में २० अपभ्रंशों की जो सूची है उसमें महाराष्ट्री नहीं है, परन्तु वह कहता है: "नागर-नागरं तु महाराष्ट्री शौरसेन्यो प्रतिष्ठितम् ॥"

इस महाराष्ट्री में 'सेतुबन्ध' नामक काव्य था और वह कालिदास-रचित था, ऐसा कहा गया है। दण्डी ने अपने ग्रन्थ में उस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त शालिवाहन-रचित 'शृङ्गारपरक पद' महाराष्ट्री में हैं, ऐसा भी कहा जाता है। संस्कृत-नाटकों में महाराष्ट्री स्त्री-पात्रों के मुँह से कहलवाई जाती है। उस भाषा का व्याकरण वररुचि के 'प्राकृत-प्रकाश' में मिलता है। वराहमिहिर छठी शती के आरम्भ में हुआ, उसने महाराष्ट्र का उल्लेख किया है। ऐहोली की गुफा में महाराष्ट्र में तीन देश और ६६००० गाँव थे, ऐसा उल्लेख है। चीनी यात्री युआन-च्वाग ईसा की सत्रहवीं शती में आया था, वह चालुक्य-वंश के प्रदेश को 'मोहोलोच' कहता है। इसका घेरा १००० मील था और राजधानी भड़ोच से १६७ मील दूर थी।

पहले विदर्भ देश को ही महाराष्ट्र शब्द से सम्बोधित करते थे। राजशेखर की 'बाल रामायण' में विदर्भ और महाराष्ट्र नाम एक ही देश के लिए प्रयुक्त हैं (१०-७४)। 'अनर्घराघव' में भी 'इदमग्रे महाराष्ट्र मडलैकमडन कुण्डिन नाम नगरम्' ऐसा कुण्डिनपुर का उल्लेख है।

यह सब प्राचीन उल्लेख होते हुए भी 'महाराष्ट्र' का नाम मराठों के बाद ही प्रचलित हुआ। 'रट्ट' और महारट्ठ' किसी मराठा जाति का पुराना नाम रहा होगा। परन्तु डॉ० अम्बेडकर के अनुसार 'महार' जहाँ-जहाँ रहता है वह महाराष्ट्र है। अनुश्रुति यह भी है कि 'मर के हटा' शब्द से 'मराठा' की उत्पत्ति हुई है। पहले महाराष्ट्र में अशोक का राज्य था। बाद में आन्ध्रभृत्य या शालिवाहन राज्य करते रहे। शालिवाहन-घराना करीब ३०० वर्षों तक अधिकारारूढ था। बीच में ईस्वी सन के आरम्भ में करीब ५० वर्षों तक शकों का साम्राज्य था। शालिवाहन के समय महाराष्ट्र में बौद्ध-सम्प्रदाय जोरों से फैला था। छठी शती मे चालुक्य उत्तर की ओर से आये और उन्होंने महाराष्ट्र पर विजय प्राप्त की। उसके बाद का राज-वंशों का इतिहास इस प्रकार से है—

पूर्व चालुक्य (ईस्वी ५५०—७५३)
राष्ट्रकूट (ईस्वी ७५३—६७३)
उत्तर-चालुक्य (ईस्वी ६७३—११७६)
यादव वंश (ईस्वी ११७६—१३१८)

अलाउद्दीन ने आकर यादवों का राज्य खालसा किया। १३४७ तक सुलतानों का राज्य था। बाद में बहमनी राज्य की स्थापना हुई। पन्द्रहवीं शती के अन्त में बहमनी राज्य के पाँच टुकड़े हुए। बाद मे मुगलों का आधिपत्य रहा। मराठे, पेशवाओं और अँग्रेजों का इतिहास तो प्रायः सर्व विश्रुत ही है।

इतिहास-संशोधक राजवाडे ने अपने 'महाराष्ट्राचा वसाहतकाल' निबन्ध में और 'राधामाधव-विलास-चंपू' की भूमिका मे महाराष्ट्रियों की प्राचीन संस्कृति के विषय मे एक उत्पत्ति दी है। मगधदेशाधिपति के भय से महाराष्ट्रिक बौद्ध-क्रांति से घबराकर ईसापूर्व पाँचवीं शती मे दक्षिणारण्य में गए। अशोक के शिला-लेखों में उल्लिखित 'रास्टिक' और थे। महाराष्ट्रिकों ने अपने मे वैराष्ट्रिक, राष्ट्रिकों को समा लिया और त्रिमहाराष्ट्रिक बना। दक्षिण मे ६०० वर्षों तक इन्होंने बस्ती की। इनके साम्राज्य चलाने

की विद्या या उच्च कलाओं का ज्ञान नहीं था । इन महाराष्ट्रिकों का नागों से सम्मिश्रण होकर चौथी शती में नया राष्ट्र बना। नागमहाराष्ट्रिकोत्पन्न मराठे लोगों की संस्कृति पर वैदिक धर्म, उपासना-मार्ग, वन देवता-पूजा, सर्प-पूजा और बौद्ध धर्म इन पाँच पन्थों की छाया थी।

मराठी साम्राज्य की १६४० ईस्वी तक, मुसलमानी कब्जे में रहकर मान-पद प्राप्त करने की नीति थी। शिवाजी के समय महाराष्ट्र में कुछ स्वराज्य प्राप्त करने की भावना जागी। शिवाजी के बाद शाहू महाराज से सवाई माधवराव तक हिंदू-पद-पादशाही स्थापित करने की, स्वराज्य-रक्षण और साम्राज्य-विस्तार की भावना काम करती रही। १८१८ ईस्वी में मराठी साम्राज्य अनेक कारणों से नष्ट हुआ और अँग्रेजी शासन-काल में मराठी रियासतें अँग्रेजों के अधीन रहकर बड़ी जागीरों की तरह बन गई। शिवाजी की मृत्यु के समय महाराष्ट्र का राज्य-विस्तार प्राय १२००० घनमील था। इसकी आमदनी डेढ से पौने दो करोड रुपये की थी। इसमें २६७ किले भी थे। शिवाजी के बाद जो साम्राज्य बढता गया तो १८०३ ईस्वी में शिवाजी की मूल जागीर से २३६ गुना बटा, और आमदनी भी ५४ हजार गुनी बढी। साम्राज्य-विस्तार के उस सारे इतिहास के विवरण में जाना यहाँ आवश्यक नहीं है।

महाराष्ट्र-भाषा-भाषी जनता परिश्रमशील, रूखी, बुद्धि-प्रधान, कम भावुक और लगनशील हैं। वे जिस किसी कार्य को ले लेते हैं, उनमें पूरे प्राण-पण से जुट जाते हैं। राम गणेश गडकरी उर्फ 'गोविंदाग्रज' कवि ने महाराष्ट्र-वन्दना में इसका वर्णन करते हुए कहा है कि 'यह फूलों का देश है वैसे पत्थरों का भी देश है। यह मजबूत शरीर वाले और मोटा-झोटा खाने-पहनने वाले लोगों का देश है।' यह बात बहुत अंशों में सही है।

: २ :

मराठी भाषा : उद्गम और विकास

मराठी भाषा के उद्गम के विषय मे विद्वानो में ऐकमत्य नहीं है। स्व० चितामण विनायक वैद्य के अनुसार 'मराठी भाषा का कुल-संस्कृत भाषा है।' मराठी की जननी महाराष्ट्री-प्राकृत है, प्रत्यक्ष जनकत्व महाराष्ट्र अपभ्रश को देना चाहिए। महाराष्ट्री भाषा महाराष्ट्र देश के अपभ्रश से निकली है, ऐसा स्टेन कोनौ ने सिद्ध किया है। डॉक्टर ग्रियर्सन का भी यही अभिमत है।

महाराष्ट्र में रहने वाले आर्य भोज और यादव जाति के थे। अतः उनकी भाषा शौरसेनी से लगी हुई थी। महाराष्ट्री कुछ मामलों मे मागधी और विशेषत अर्द्धमागधी से बहुत-कुछ मिलती हुई है। इसका कारण पूर्व की ओर उनका महाराष्ट्र से सम्बन्ध था। अपभ्रश की उत्पत्ति ईसा की पॉचवीं-छठी शती से हुई। ईसा की दसवीं-ग्यारहवीं शती में अपभ्रश को आज का रूप मिला। मराठी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का उद्गम इसी समय हुआ। मागधी से बंगाली, महाराष्ट्री से मराठी, पैशाची से पजाबी, शौरसेनी से हिन्दी। चिं० वि० वैद्य के अनुसार ७०० ईस्वी मे मराठी भाषा का उदय हुआ। डॉ० पा० दा० गुणे के अनुसार ग्यारहवीं शती में यह भाषा स्थिरीकृत हुई। डॉ० तगारे के अनुसार भिन्न-प्रान्तीय अपभ्रशों से महाराष्ट्री का सम्बन्ध जोडना व्यर्थ है। मराठी का

विकास दक्षिणापथ के प्राकृत शिला-लेख, महाराष्ट्र में रचित प्राकृत-अपभ्रश-वाङ्मय और जैन सस्कृत के 'अशुद्ध' रूपों में से दृग्गोचर होता है। इसीको डॉ० वैद्य और प्रा० जैन दाक्षिणात्य अपभ्रश भी कहते हैं।

दंडी ने महाराष्ट्री को प्रकृष्ट प्राकृत कहा है। व्याकरणकार प्राकृत का पर्यायवाची शब्द महाराष्ट्री मानते है। 'सत्तसई', 'वज्जासुग्ग', 'दहमुहवहो', 'सेतुबध', 'गइडवहो' इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं। महाराष्ट्री की निम्न विशेषताएँ भाषा-शास्त्रज्ञों ने बताई हैं।

१. शब्द स्वरान्त होते हैं। २ 'ॠ' के स्थान पर 'रि' या 'ई'। ३ 'ल्' के बदले 'इलि'। ४. 'ऐ' के बदले 'ए', 'औ' के बदले 'ओ', 'ऐ' के लिए 'अइ'। ५. अर्ध स्वर का लोप। ६. दीर्घ स्वरो का ह्रस्व बनना। ७. 'अय' और 'अव' के बदले 'ए' और 'ओ'। ८. दो स्वरों में आये क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प्, ष् और व् का प्रायः लोप। ९. लुप्त व्यजनों के स्थान पर दूसरे वर्ग के व्यजनों का आगम। १० लुप्त व्यजनों के स्थान पर श्रुति सुखार्थ 'य' आगम। ११. आरम्भिक व्यजन वैसे तो कायम रहते हैं, परन्तु 'प्', 'त्', 'न्' और 'य्' आरम्भ में हों तो उनके स्थान पर दूसरे व्यजन होते हैं। १२ 'य्' के बदले 'ज्', दो स्वरों के बीच में 'ख्', 'घ्', 'थ्', 'ध्' और 'भ्' के बदले 'ह्', दो स्वरों के बीच में 'ट्' के बदले 'ड्', 'ठ्' के बदले 'ढ्', 'ब्' के बदले 'व्', 'ड्' के लिए 'ल्', 'त्' के लिए 'ड्', 'फ्' के लिए 'भ्' या 'ह', 'न्' के लिए 'ण'। १३. 'र्' के लिए 'ल्'। १४ 'श्' या 'ष्' के बदले 'स्'। १५ 'ह' के लिए 'घ्' इत्यादि।

महाराष्ट्री के सयुक्त वर्णों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के कई भेद माने गए हैं—

य + व्=च्—प्रत्यूप (पच्चूष)

ष्क=ख—निष्कामति (निक्खमदि)

ष्ट या ष्ठ=ट्ठ—अष्ट (अट्ठ)

श्न, ष्ण, ह्न, ह्ण, च्ण=ण्ह—उष्ण (उण्ह)

क्ष=ख या छ् या झ्—इक्षु (इक्खु), क्षय (खय), क्षीण (झीण)

थ्व=छ—पृथ्वी (पिच्छी)

द्व=ज—विद्वान् (विज्ज)

ध्व=झ—बुद्ध्वा (बुज्झा)

ह्व=ब्भ—जिह्वा (जिब्भा)

ऐसे कई नियम शब्द-रूप-निर्माण के सम्बन्ध में भाषा-शास्त्रियों ने खोज निकाले हैं। आधुनिक मराठी का शब्द-संग्रह इस प्रकार से तत्सम (प्राचीन और उत्तर) तद्भव, द्राविड (कन्नड़, तमिल, मलयाली, तूलु आदि), देशज या देश्य, आस्ट्रिक या आस्ट्रो-एशियाटिक (जावा, सुमात्रा, मलाया आदि के शब्द), सामी (यहूदी, अरबी, फारसी, तुर्की आदि), पश्चिमी यूरोपीय (पन्द्रहवीं सदी के बाद पुर्तगाली, फरासीसी, डच इत्यादि) आसन्न-परिसरवर्ती बोलियाँ—इन स्रोतों से बना है। मोल्सवर्थ के प्रारम्भिक कोश में मराठी की शब्द-संख्या ६० हजार है। वासुदेव गोविन्द आपटे की परिगणना ५० हजार है। महाराष्ट्र शब्द-कोशकार ने १,१२,१८६ शब्द-संख्या दी है। इनमें विदेशी (फारसी, अरबी, तुर्की) २६०० शब्द हैं, १५०० यूरोपीय भाषा के हैं, मूल अंग्रेजी ५६० हैं। मराठी धातुओं की संख्या ८ हजार से अधिक नहीं है।

डॉ० मनमोहन घोष के अनुसार महाराष्ट्री केवल महाराष्ट्र की भाषा नहीं थी। वह शौरसेनी मागधी की समकालीन नहीं थी। बल्कि शौरसेनी का ही वह एक बाद का रूप है, जो दक्षिण में देश्य प्राकृतों से मिलकर बना। यों शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश बनने के बीच का एक रूप-मात्र है महाराष्ट्री। परन्तु प्राकृतों के जो दो वर्ग समान माने जाते हैं उनमें शौरसेनी संस्कृत के अधिक निकट है और मागधी-अर्द्धमागधी-महाराष्ट्री दूसरा वर्ग है, जिसमें 'प्रान्तिक' शब्द अधिक हैं। इस प्रकार से कुछ विद्वानों के अनुसार आधुनिक मराठी के मूल में किसी एक प्राकृत विशेष को मानना सही नहीं है। पालि और पैशाची में मराठी की तरह

'ल' है। संस्कृत में नहीं है, वैदिक भाषा में है। पैशाची में 'न' है 'ण' नहीं। अन्य प्राकृतों में 'ण' है, 'न' नहीं। मराठी में पैशाची के 'ण' की जगह 'न' करने की पद्धति आ गई है। मागधी की तरह मराठी में 'र' की जगह 'ल' और 'स' की जगह 'श' होता है। 'स्थ' या 'र्थ' की जगह 'स्त' होता है, 'ष्ट' की जगह 'स्ट'। अर्द्धमागधी की तरह मराठी में भी दीर्घ स्वर ह्रस्व होते हैं (कुमार—कुमर), मृदु व्यंजन कठोर होते हैं (व्रजति—वच्चइ—वोंचू), आद्य 'द्' 'ड' हो जाता है। (दशति—डसइ)। महाराष्ट्री की तो कई व्याकरणगत विशेषताएँ मराठी में आ गई हैं : षष्ठी-चतुर्थी के 'स्स' प्रत्यय का 'स' रूप बनना, नपुंसकलिंगी संज्ञा का लिंग न बदलना, क्रियाओं के काल और अर्थप्रत्यय महाराष्ट्री की तरह हैं; कृदन्त, आगम विकल्प, इच्छार्थक धातु, समीपार्थी 'इल' प्रत्यय, क्त और क्तवतु प्रत्यय से धातु-साधित भी वैसे ही हैं—

महाराष्ट्री	मराठी	हिन्दी
म्मि	मी	मैं
अहम्मि	अम्हि	हम
मए, मइ	मिया, म्यॉं	मैंने
मज्झो, महाहिंतो	मजहुनि	मुझसे
मज्झ	मज	मुझे
मेच्चअ	माझ	मेरा

अब मराठी भाषा की व्युत्पत्ति का विचार छोड़कर उसके विकास का एक मानचित्र दें। मराठी भाषा की प्रथम विकासावस्था शके ६०८ से शके ६०० तक के ताम्र-पटों और शिला-लेखों में पाई जाती है। जो मराठी शब्द ईसा की सातवीं शती के आरम्भिक शिला-लेख मे मिला है वह है पन्नास, प्रिथिवी। इस प्रकार से ७वीं से १२वीं शती तक की मराठी का निश्चित रूप में कोई ग्रन्थ उपलब्ध न होने से ताम्र-पटों के आधार पर ही बताया जा सकता है। इसीसे इस काल के ताम्र-पटों का अध्ययन पूरी तरह नहीं हुआ है।

डॉ० तुलपुले ने ईस्वी ११०० से १३५० तक की मराठी का विशेष अध्ययन किया है। ९८३ ईस्वी (श्रवणबेलगुल) के शिला-लेख से १२६७ ईस्वी तक के शिला-लेख और ताम्र-पटों की भाषा का विचार किया है। इस काल-खण्ड को उन्होंने यादव-काल माना है। डॉ० कात्रे के अनुसार इस काल के एक ही ग्रन्थ में कई भाषा-रूप मिलते हैं। इस कारण से ग्रन्थ-रचना के काल की भाषा कौन-सी है यह कहना कठिन है।

मराठी के आद्यकवि मुकुन्दराज का समय ११२८ से १२९८ ईस्वी माना गया है। उसके ग्रन्थ मूलभाषारूप में नहीं मिलते। मराठी की कालिक अवस्थाओं का पूरा ज्ञान 'ज्ञानेश्वरी' से शुरू होता है। यों १३ वीं शती से यह स्वरूप निश्चित है। मराठी का पहला ग्रान्थिक साक्ष्य ११९९ में सोमेश्वर की 'अभिलषितार्थ-चिन्तामणि' के मराठी पदों में पाया जाता है।

ईस्वी १३१२ में यादवों की सत्ता समाप्त हुई। देवगढ का राज्य मुसलमानी राज्य से जोड़ा गया। यवनों की भाषा का मराठी पर भी प्रभाव पड़ा, पर वह सरकारी दरबारी भाषा तक ही रहा। साधारण लोगों की भाषा और वाङ्मय पर यावनी का प्रभाव नहीं के बराबर हुआ। चोंभा कवि का उदाहरण (ईस्वी १३०० से १४०० के बीच) केवल मूल रूप में उपलब्ध है।

पन्द्रहवीं शती में दुर्गादेवी का अकाल (ई० १४६८ से १४७५) महाराष्ट्र में पड़ा और इस अकाल के कारण कई लोग अपना देश छोड़-कर बाहर गये। वापिस आते हुए परप्रांतीय भाषाओं के संस्कार वे अपने साथ ले आए। ज्ञानेश्वर और एकनाथ के काल की भाषाओं के बीच का रूप इस शती में मिलता है।

सोलहवीं शती में भाषा अधिक स्थिर हुई। महानुभाव मराठी को पंजाब और अफगानिस्तान तक ले गये। फारसी का प्रभाव मराठी पर अधिक होने लगा। सत्रहवीं शती में शिव-काल में फारसी का आक्रमण हटमूल हुआ। पुर्तगालियों से भी सम्बन्ध इसी काल में हुआ और जहाजी और

सेना-सम्बन्धी कई शब्द रूढ हुए। जैसे—'शिरपेंच', 'फालतू', 'कम्पू', 'कारतूस', 'परात', 'पिस्तौल', 'काफिर', 'साबुन', 'मिस्त्री', 'फर्मा' आदि। अठारहवीं शती में पेशवा-काल में फिर पंडित लेखकों के साथ-साथ मराठी भाषा संस्कृत-प्रचुर होने लगी। मराठी के तीनों रूप प्रचलित थे। मोरोपन्त (संस्कृतनिष्ठ), श्रीधर (प्रासादिक सहजगम्य बालबोध) शाहीरकवि (फारसी तथा बोलियों से भरा जन-रूप)। उन्नीसवीं शती में पहले २५ वर्षों तक यह फारसी-प्रचुरता रही। बाद में गद्य के विकास के साथ-साथ अंग्रेजी का प्रभाव शुरू हुआ। विराम-चिह्नों का उपयोग हुआ और अनुवाद काफी होने लगे। इस शती में १६२५ के लगभग बॅ सावरकर ने भाषा-शुद्धि का आन्दोलन चलाया था—पर वह जड़ें नहीं जमा सका।

: ३ :

साहित्य का आरम्भिक रूप

आर्ष संस्कृत, पाणिनीय संस्कृत, काव्य-पुराणों की अभिजात संस्कृत के बाद 'सप्तशतीसेतुग्रन्थ' की महाराष्ट्री प्राकृत से मुकुन्दराज ज्ञानेश्वर की नागरी म-हाटी भाषा उत्क्रान्त होती गई। उसमें देशज वाक्प्रचार और शब्द-प्रयोग मिलते गए और उसका विकास हुआ। एकनाथ के समय से उसे आधुनिक रूप मिला। वैसे तो अन्य सभी भारतीय देश-भाषाओं के आविर्भाव का काल सातवीं शती के करीब का है। ११ से १२वीं सदी में उन सबमें स्वतन्त्र ग्रन्थ-रचना आरम्भ हुई। इस प्रकार से प्रत्येक भाषा के साहित्यिक रूप-निर्माण में ४००–५०० वर्षों का समय सहज लगा है। पन्द्रहवीं शती के अन्त में कृष्ण याज्ञवल्की नामक ग्रन्थकार ने 'कथा-कल्पतरु' ग्रन्थ में प्रांतानुसार जो 'लोकबोली' गिनाई है वे इस प्रकार से हैं—

भिल्ल, हिंदोइ, कोकण, कूनिय, कणिच, काश्मीर, आरबस्तान, द्रविड़, गौड, तैलग, सैंधळ, लंका, कावंग, कुम्भकोण, मरग, मरु, ओहर, जाम, काम, भोटाल, अहिर, गुर्जर, कर्नाटक, चैंघ, माल, चीनचाटक, कनोज, काबुल, यवात, अयनी, मंगरूळ, मोरकाड, मकाशील, कोह, चोहट, महानन्द, हाबिल, काबिल, मुलताना, हवस, फिरंगी, खुदासन, वेद, अतवेंद, महाचीन, चोल, पाचाल, अग, वग, कलिंग, असोव, काबोज, नेपाल, जाफरशाग, कुन्तल, मेरु, तपौट, चानरठगुल,

आरम्भिक काव्य-रूप हैं। १२वीं शती के धर्ममयूर कवि की रचना में बौद्ध शैली के ग्रन्थों पर ब्राह्मण रूप-मात्र चढ़ाया गया है। चंडीदास और विद्यापति के समय तक आने से पूर्व उत्तर-शैव और उत्तर-बौद्ध दर्शन-प्रभाव के साहित्य का ही बंगला में विशेष महत्त्व है। कृष्ण चैतन्य का आविर्भाव पन्द्रहवीं सदी में हुआ। उन्होंने वैष्णव-काव्य-धारा के प्रचार में बड़ी सहायता की।

इन्हीं अन्य प्रादेशिक भाषाओं के आरम्भिक काव्य-रूपों की तरह हिन्दी में भी आदिकाल के सिद्ध कवियों ने, स्वयभू और सरहपा, कान्हपा और अब्दुर्रहमान-जैसे अपभ्रंश के रचनाकारों ने साहित्य-सरिता के स्रोत-बिन्दु का कार्य किया। मराठी के आदि रूप में भी महानुभाव पथ का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। महानुभाव पथ के एक विख्यात लेखक श्री मुकुन्दराज आराध्य ने सन् १६२६ में 'ब्रह्मविद्याशास्त्र' नामक ग्रन्थ के आरम्भ में महानुभावियों के दर्शन का सार सुन्दर हिन्दी में छापा है। उनके बाद 'विविध ज्ञानविस्तार' में वा० ना० देशपांडे ने 'महानुभावाचा वेद' नामक लेख-मालिका लिखी। ह० ना० नेने और मवालकर ने १६३१ में 'चक्रधर सिद्धान्त सूत्रपाठ' प्रकाशित किया और १६३७ में 'दृष्टान्त पाठ'। 'महावाक्य प्रमेय' पर 'विविध ज्ञानविस्तार' में बाद मे लिखा गया। १६३४-३५ में भास्करभट्ट बोरीकर की 'उद्धव गीता' उर्फ 'एकादशस्कन्द' ग्रन्थ डा० वि० भि० कोलते ने 'शिशुपाल वध' काव्य के साथ प्रकाशित किया। बाद में इस विषय पर य० खु० देशपांडे, अ० का० प्रियोलकर और कोलते ने बहुत-सा कार्य किया है जो ग्रन्थरूप में हमारे सामने आ चुका है। महानुभाव-साहित्य को समझने में बड़ी अड़चन यह थी कि उस पथ के ग्रन्थ सांकेतिक लिपि में लिखे गए हैं। अभी तक इस पंथ के मतवाद पर विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है।

वैसे तो 'महानुभाव' नाम बहुत बाद में मिलता है। इसे 'मार्ग महात्मा, प्रतीति पथ, परमेश्वर-शास्त्र, परमधर्म, अच्युतगोत्रीय' शब्दों से हीं-कहीं परिभाषित किया गया है। पन्द्रहवीं सदी के बाद के त्र्यंबक

कवि ने 'भटोमागु' नामक ग्रन्थ में 'महानुभाव' नाम का प्रथमोल्लेख किया है। श्रीदत्तात्रेय प्रभु और श्रीकृष्ण चक्रवर्ती महानुभावों के प्रमुख देवता थे। चक्रधर के गुरु ऋद्धपुर के गुण्डम राउल या श्रीप्रभु विदेही पुरुष थे। उनके गुरु थे द्वारावती के चागदेव महायोगी। पथ की सघटना व्यवस्थित कर देने वाले आचार्य नागदेव अथवा भटोबा को चक्रधर ने आचार्य पद दिया। गुण्डम राउल से चक्रधर ने शक्ति स्वीकार की। यो गुरु-परम्परा इस प्रकार से है—

आदिकरण श्रीदत्तात्रेय प्रभु

|

श्री चागदेव राउल

|

श्री प्रभु गुण्डम राउल

|

श्री चक्रधर

|

श्री नागदेवाचार्य

महानुभावों की इस गुरु-परम्परा में श्रीदत्तात्रेय का अवधूत सन्यासी-मार्ग भी आ जाता है। फाउरली की कामाख्या हठयोगिनी 'रतीची चाडा' द्वारावतीकार के वैराग्य को डिगाने आई। परन्तु उन पर कोई असर नहीं हुआ ऐसा 'लीला चरित्र' ग्रन्थ में उल्लेख है। इसे 'आम्नाय पथ' भी कहा गया है। गोविन्द प्रभु के 'ऋद्धपुरचरित्र' में लीला ६ मे श्री गुण्डम के गुरु 'कमलारण्य' कहे गए हैं और उनकी योग-पद्धति का नाम 'विबुधारण्य' बताया गया है। यह संन्यासी 'दशनामी' पंथ में से हैं ऐसा भी कहा गया है। जगन्नाथपुरी के गोवर्धन मठ-आम्नाय-पीठ में आचार्य के नाम के अन्त में 'वन या आरण्य' उपपद जोड़ते हैं। शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठों में काशी प्रयाग के पुराने अखाड़ों में दत्तात्रेय की पादुकाएँ पूजी जाती हैं। माहूर के 'शिखर' स्थान के महंत दशनाम संन्यासियों में से 'भारती'

का लिखा हुआ 'गुरु चरित्र' ग्रन्थ महाराष्ट्र में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ और अभी भी बड़े-बूढ़ों को वह कंठस्थ है। पुराने घरों में उसका नित्य पाठ होता है।

ज्ञानेश्वरी के बाद प्राचीन साहित्य में एकनाथ की भागवत की टीका वन्द्य और साहित्यिक गुणों में समतुल्य मानी जाती है। भागवती टीका में एकनाथ की एक बड़ी विशेषता थी संस्कृत में मात्र मुट्ठी-भर पण्डितों के लिए उपलब्ध वस्तु को जनता की, सर्वसाधारण की, लोकानुरंजिनी और लोकोपयोगी वस्तु बनाना। 'संस्कृत वन्द्य, प्राकृत निन्द्य। हे बोल काय होती शुद्ध।' एक नाथ का यह वचन "का भाषा का संस्किरित" वाली प्रसिद्ध उक्ति की याद दिलाता है। ज्ञानेश्वर की रचना में अभिजात्य अधिक था। एकनाथ की रचना अधिक प्रासादिक और सर्वप्रिय हुई। ज्ञानेश्वर कई स्थलों पर कठिन और रहस्यवादी हैं। एकनाथ तुलसीदास की भाँति अर्थसुलभ, साधारणीकरण-युक्त तथा अपनी सरलता से अलंकृत हैं। एकनाथ की परम्परा को नाथ-परम्परा कहते हैं, जिसमें मुख्य कवि हुए दासोपन्त, (१५५१--१६१५ इस्वी). त्र्यम्बकराज (१५८० ईस्वी के निकट), शिवकल्याण (१५६८--१६३८), रमावल्लभदास आदि। दासोपन्त ने ४६ ग्रन्थ और सवा लाख ओवियाँ (छन्द विशेष) लिखीं। 'ज्ञानेश्वर-पञ्चायतन' में ज्ञानेश्वर चार भाई बहन और नामदेव आते थे: वैसे ही 'एकनाथ पंचायतन' में, एकनाथ, दासोपन्त, रामजनार्दन और विठारेणुकानन्दन नामक कवि आते हैं त्र्यम्बकराज का 'बाल बोध' ग्रन्थ वेदान्त पर और ओंकारोपासना से सम्बद्ध है। शिवकल्याण ने 'नित्यानन्दैक्यदीपिका', 'रासपंचाध्यायी', 'ब्रह्मस्तुति' नामक ग्रन्थ लिखे हैं। रमावल्लभदास की गीता की 'चमत्कारी टीका' प्रसिद्ध है।

प्रमुख संत कवि

महाराष्ट्र की सन्त-काव्य-परम्परा पर उसके आस-पास के यानी कर्नाटक, तमिलनाड, आंध्र आदि का प्रभाव बहुत पड़ा। 'भक्ति द्राविड़ ऊपजी,

लाये रामानन्द' यह लोकोक्ति भी इसी कारण सार्थक है। रामानन्द उत्तर भारत तक आकर बनारस में कबीर आदि के गुरु हुए। प्रो० रा० द० रानडे के मतानुसार श्रीपाद रामानन्द ज्ञानेश्वर के पिता थे। रामानन्द करीब १४०० से १४७० ई० में हुए। वे ही अपने भक्ति-पन्थ में वैरागियों अछूतों और अहिन्दुओं को लाये। एफ० ई० के० के अनुसार जात-पाँत न मानना रामानन्द पर मुस्लिम प्रभाव का द्योतन करता है। मध्ययुग की समग्र स्वाधीन-चिन्ता के गुरु रामानन्द ही थे, ऐसा डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में कहा है। विशिष्टाद्वैती राघवानन्द के शिष्य होने पर भी उन्होंने अपना 'रामावत सम्प्रदाय' चलाया। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने 'भारतीय मध्ययुगेर साधना' मे हरिहरदास की 'हरिभक्ति-प्रकाशिका' का एक उदाहरण दिया है; जिसमें वर्णाश्रम के बन्धन न मानने की बात स्पष्ट लिखी है। रामानन्द की परम्परा में सेना नाई, रैदास चमार, कबीर जुलाहा, धन्ना जाट, पीपा राजपूत आदि थे। महाराष्ट्र की सन्त-नामावली में सेना नाई का नाम मिलता है। उसके पदों में यह अन्तर्साक्ष्य है :

आम्ही वारीक वारीक। करूँ हजामत वारीक॥
विवेकदर्पण आयना दावूँ। वैराग्य चिमटा हालवूँ॥
उदकशांति डोई घोळूं। अहंकाराची शेंडी पिळूं॥
भावार्थाच्या बगला झाडूँ। काम क्रोध नखे काढूँ॥
चौवर्णा देऊनी हात। सेना राहिला निवान्त॥

अर्थात् हम बहुत बारीक हजामत कर बार बनाते हैं। विवेक-दर्पण का आईना दिखाते हैं। वैराग्य का चिमटा हिलाते हैं। उदकशान्ति सिर पर मलते हैं। अहंकार की शिखा (चोटी) उमेठते हैं। भावार्थ की बगलें साफ करते हैं। काम-क्रोध के नख काटते हैं। चारों वर्णों को हाथ देकर, सेना शान्ति से रहा।

रामानन्द की परम्परा का ही यह प्रभाव था कि दर्जी का काम करने वाला वा रास्ते में लूट-पाट करनेवाला नामदेव, घर का पिसान, कूटना

चाहिए। इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का कथन है कि सुरा पीने पर ब्राह्मणी पति-लोक को नहीं जाती, किन्तु इस लोक में कुत्ती, गीधनी और शूकरी की योनि में जन्म लेती है। 'मिताक्षरा' के मतानुसार यह नियम द्विजातियों पर ही लागू है और यदि वे सुरा-पान करें तो उन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिए, किन्तु शूद्र-भार्या के ऐसा करने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है।"

विवाह-सम्बन्धों पर भी बड़े-बड़े प्रतिबन्ध थे। प्रो० शर्मा लिखते हैं कि

"विभिन्न प्रकार की प्रतिषेधात्मक कार्रवाइयों के होने पर भी उच्च वर्ण और शूद्रों के बीच विवाह-सम्बन्ध और यौन-सम्बन्ध अवश्य होते थे, क्योंकि ऐसे लोगों की, जिनका जन्म वर्णसंकर के रूप में हुआ है, एक बहुत बड़ी सूची मिलती है। शूद्रों से उनका स्थान कुछ छोटा है और उन्हें असत् शूद्र बतलाया गया है।

मनु के विचारानुसार ब्राह्मण क्रम से छ विवाह कर सकते हैं, क्षत्रिय अन्तिम चार और वैश्य तथा शूद्र के लिए आसुर, गांधर्व और पैशाच तीन प्रकार के विवाह हैं। यहाँ वैश्य भी शूद्रों की कोटि में रखे गए हैं। धन, विद्या और प्रभाव के कारण उच्च वर्णों के पुरुष अधिक स्त्रियों को रख सकते थे।"

इस सामाजिक परिपार्श्व में सन्तों का कार्य देखने पर उनके महान् साहस, स्पष्टवादिता, निर्भीक स्वाधीन-चिन्ता और त्यागमय निष्ठा से मन अभिभूत हो जाता है। इस वर्ण व्यवस्था की इस्पाती कारा को तोड़कर वे आगे बढ़े।

महाराष्ट्र में जो हरिजन सन्त हुए उनमें पाँच कवि और दो कवयित्रियाँ प्रधान हैं। उनके मूल गुरु ज्ञानेश्वर थे, जो स्वयं जाति-भेद को नहीं मानते थे। शूद्रों के लिए भी उन्होंने मोक्ष का मार्ग खोला। वर्णाश्रम-धर्म की मूल रचना में हिन्दू-समाज के प्रत्येक अंग का कर्त्तव्य एवं दायित्व नियत था और प्रत्येक जाति को समाज का एक आवश्यक अंग माना जाता था,

किन्तु मध्य युग में शूद्रों की अवस्था हिन्दू-समाज में अत्यन्त शोचनीय हो रही थी। शूद्र जाति में जन्म लेना ही एक घोर पातक था, किन्तु गीता के आधार पर ज्ञानदेव ने शूद्रों को विश्वास दिलाया :

या लागी पापयोनीं हीं अर्जुना। की वैश्य शूद्र अगना।
मातें भजती मदना। माक्रिया येती॥

उत्तरी भारत में जो यवनों का आक्रमण हुआ था उससे ज्ञानदेव परिचित थे और यादव-वंशज राजाओं को उन्होंने जताया :

म्हणोन स्वधर्म सांडील। तयातें काल दंडील।
चोर म्हणानि हरील। सर्वस्व जयाचें।

कर्मकाण्ड के सदोष पथ का हिन्दू धर्म अनुसरण कर रहा था, किन्तु ज्ञानदेव ने उसे लोक-कल्याण के सच्चे धर्म की ओर लगाया। प्रो० न० र० फाटक ज्ञानदेव को एक राष्ट्रीय नेता मानते हुए कहते हैं—"उत्तरी भारत में इस्लाम के आने से जो राजकीय आक्रमण और धार्मिक संक्रमण हुआ था उसके कारण साधारण जनता किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही थी, पर गीता का आधार लेते हुए ज्ञानदेव ने जनता में आत्मविश्वास का निर्माण किया।"[1]

इस सारी परम्परा में प्रमुख कवि हैं नामदेव। उनके विषय में बहुत अधिकृत जानकारी नहीं मिलती। लक्ष्मणनारायण गर्दे ने 'कल्याण' के सन् १६३८ के 'सन्त अंक' में उनके बारे लिखा था :

"इनका जन्म सम्वत् १३२७ में कार्तिक शुक्ला ११ रविवार को सूर्योदय के समय हुआ। ये बड़े विट्ठल-भक्त थे। वे 'शिंपी' थे। राजपूताने में नामदेव को लोग छींपी कहते हैं। किन्तु वहाँ एक ही जाति के लोग दर्जी और छींपी कहलाते हैं। नामदेव अठारह वर्ष पंजाब में रहे, पीछे पंढरपुर लौट आए। पंढरपुर में श्री विट्ठल मन्दिर के महाद्वार की सीढ़ी पर सम्वत् १४०७ विक्रमी में अस्सी वर्ष की अवस्था में

1 ज्ञानेश्वर।

नामदेव ने शरीर त्यागा।''[1]

श्री विनयमोहन शर्मा ने अपने 'नामदेव और उनकी हिन्दी-कविता' नामक लेख मे नामदेव की गुरु-परम्परा बताते हुए कहा है : ''हम डॉ० ईश्वरीप्रसाद के इस मत से सहमत नहीं हैं कि नामदेव पर मुसलमानी प्रभाव पड़ा है। गोरखनाथ को महाराष्ट्र में नाथ मत के प्रचार का श्रेय दिया जाता है। मराठी में गोरखनाथ का 'अमरनाथ सवाद' नामक ग्रन्थ है, जिसके दृष्टान्त और प्रतीक 'ज्ञानेश्वरी' के उदाहरण और प्रतीक से बिलकुल मिलते हैं।'' नामदेव के गुरु 'खेचर' प्रसिद्ध नाथपन्थी थे। इस पन्थ के बाह्य चिह्न हैं·

शैली, शृङ्गी, कथा, झोली विभूति लगाया तन मा।
कोटि चन्द्रका तेज भुजत है, जली आपने गत मा॥

मेखला, शृगी, कन्था, कर्णमुद्रा, कौपीन, पुङ्गी, व्याघ्राम्बर, खड़ाऊँ और झोली के साथ कान छिदाना भी इनका बाह्याचार है। इसीसे इनको 'कनफटा' भी कहते हैं। भिक्षा के समय एकतारा बजाते और 'अलख निरजन' कहते है। भोजन के पूर्व पुङ्गी बजाकर भोजन करते है। ये मूर्ति-पूजा कर्म-काण्ड, तीर्थ, व्रत एव ऊँच-नीच भेद की तीव्र निन्दा करते हैं। वारकरियो ने नाथ-मत की आभ्यन्तर धारा को अपनाकर गृहस्थाश्रम मे ही भक्ति की सहज-साधना का प्रचार किया।

नामदेव कहते है .

जैआनीले कागद, काटीले गूडी आकास मधे भरमीअले।
पचजना शिउ बात बतउ आ चीत सु डारि राखिअले॥
मनु राम नाम वेधी अले
अनीले कुम्भ भराइले ऊदक राकूआरि पुरदरिले।
हसत विनोद बिचार करति है, चितुसु गागरि राखिअले॥
मदरु एकू दुआर दस जाके, गऊ चरावन छाड़िअले।
पाँच कोस पर गऊ चरावत चीतसु बछुड़ा राखिअले॥

[1] पृष्ठ ४१२–४१५।

कहत नामदेव सुनहु तिलोचन, बालक पालन पउढ़ीअले।
अतरि बाहरि काज विरुधो, चीतसु बारिकि राखिअले॥

तीर्थ-स्नान की आवश्यकता पर नामदेव कहते हैं .

तीरथ देखिन जल महि पैसउ जत न सतावउगो।
अठसठि तीरथ गुरु दिखाए घट ही भीतर न्हाउगो॥

बगाल का 'सहजिया-सम्प्रदाय' महाराष्ट्र का बारकरी-पंथ ही जान पड़ता है। दोनों का मूल नाथ-पंथ में है।

ज्ञानदेव ने बारकरी पंथ को महाराष्ट्र से आगे नहीं बढ़ाया। नामदेव ने उसका उत्तर भारत में प्रचार करके कबीर, नानक, रैदास आदि सन्तों के लिए 'निर्गुण-पंथ' की भूमिका तैयार की, पर ज्ञानदेव नामदेव ने जिस मत को जनता मे प्रतिष्ठित किया था उसका बीज आठवीं सदी में ही योगी सिद्धनाथ बो चुके थे।

'महाराष्ट्र-ज्ञान-कोष' के अनुसार बारकरी सन्त कवि श्री नामदेव करहाड (सतारा) के पास नरसिवामणी गाँव मे जन्मे—इसे आजकल नए नरसिंहपुर या कोभ नरसिंगपुर कहते हैं। बाप का नाम दामा शेट और माँ का गोणाबाई थी। अपने जन्म के बारे में वे लिखते हैं :

गोणाई राजाई। दोघी सासू सुनान।
दामा नामा जाण। बाप लेक॥
नारा महादा गोंदा। विठा चौथे पुत्र।
जन्मले पवित्र। त्याचे वंशी॥
लाडाई गोडाई। येसा साखराई।
चौघी मना पाही। नाम याच्या॥
लिंबाई ती लेकी। आऊ बाई बहीण।
दासी वडी जनी। नामयाची।

पीढ़ियों से चलने वाले पेशे से नामदेव को ज़रा भी रुचि नहीं थी। इसलिए बाद में वह विट्ठल-भक्त बना। विसोबा खेचर नामदेव का गुरु था। विसोबा खेचर को मूर्ति-पूजा मान्य नहीं थी. "पाषाणाचा देव

बोलेचि ना कधीं। हरी भवव्याधि केंवी घडे।''[1]

यह उपदेश किया। नामदेव कहते हैं: 'तुम्हिया सत्तेनें, वेदांसि बोलयों, सूर्यासि चालयों' और,

व्रत तप नलगे जेणें सर्वथा। नलगे जाणें तुम्हा तीर्था।
सर्वांभूती लाहे, एक वासुदेव। पुसोनिया ठाव अहंतेचा।
तोचि साधु वोलखावा निका। मरते अईका माया बद्ध।

अंतःकरण-शुद्धि, नम्रता, आत्म-समर्पण, क्षमा, ईश्वर-भक्ति नामदेव के उपदेश का सार है। 'नामदेव' ने हिन्दी में भी कुछ अभंग लिखे हैं। सिक्खों के मुख्य आदिग्रन्थ 'ग्रन्थ साहब' में नामदेव के अभंग हैं। और सिक्ख नामदेव को बहुत मान देते हैं। पंजाब में गुरदासपुर जिले में घुमता में नामदेव की एक समाधि भी है।

नामदेव के ग्रन्थों की जो सम्प्रदाय-शुद्ध गाथाएँ आवटे ने छापी हैं वह सर्वथा विश्वसनीय नहीं हैं।[2] क्योंकि विष्णुदास नामा[3] के अभंग नामदेव के नाम पर कहे गए हैं।

आदिग्रन्थों में भी नामदेव की जो बानी मिलती है उसके विषय में डॉक्टर श्रीधर व्यंकटेश केतकर[4] ने लिखा है कि यह सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन ने बाबा नानक और दूसरे धर्म-सुधारकों के लेख संकलित करके बनाया। वैसे अर्जुन का काल ईस्वी १५८१ से १६०६ है, परन्तु इस ग्रन्थ में बाद में तेगबहादुर के पद और गुरु गोविन्दसिंह का एक दोहा भी जोड़ा गया। आदिग्रन्थ में साधारणतया सिक्ख गुरु भगत और भट्टों की बानी एकत्रित है। भगतों में निम्न लोगों की रचनाएँ हैं—

वेणी, भीकन, धन्ना, फरीद (शेख), ऊजदेव, कबीर, नामदेव, पीपा,

१ तुकारामतात्याप्रत्त अभंग १३१। अमरगाथापंचक नामदेव गाथा, अभंग १५५।

२ भा० इ० स० १८२३।

३. साके १५१७।

४ 'महाराष्ट्र ज्ञानकोष', भाग ७ पृ० (आ०) १०७।

रामानन्द, रविदास, सधना, सैणु, सूरदास, त्रिलोचन।

नामदेव इनमें पहला मराठी अभंग कवि है और वही इस ग्रन्थ का सबसे पुराना लेखक जान पड़ता है। कबीर के दोहे जो इस ग्रन्थ में हैं, वे तो सर्वप्रचलित ही हैं। 'गीत गोविन्द' का रचयिता जयदेव अद्वैत की ओर मुड़ा। रामानुज-सम्प्रदायी रामानन्द और भक्त सूरदास के भी अध्यात्मपरक पद इस ग्रन्थ में जोड़े गए।

सिक्ख-पंथ और महाराष्ट्र के भागवत-पन्थ का निकट सम्बन्ध है। ज्ञानेश्वर के पिता विट्ठल कबीर और नानक दोनों ही रामानन्द के शिष्य थे और वे इस तरह से गुरुबन्धु थे। नामदेव उनका आदिकवि था।

ग्रन्थारम्भ में जप या जपुजी का, सोदरु 'आस और गूजरी राग में सायं प्रार्थना' सोपुरखु सोहिला, गोरी, आस और धनासरी रागों में 'सोने से पहले की प्रार्थना' आदि उपासना-खण्ड है, राग ग्रन्थ का मुख्य भाग है। वे ३१ हैं। पहले चार राग उनमें महत्त्व के हैं। बाद में पुनरावृत्ति विशेष है। अन्त में भोग है, जिसमें अनेक भाषाओं के कवियों की रचनाओं की पचमेल खिचड़ी है। उदाहरण के लिए नामदेव ने पुरानी मराठी में रचना की तो त्रिलोचन ब्राह्मण ने नामदेव का अनुकरण किया है। जयदेव की भाषा संस्कृत और आधुनिक हिन्दी का सम्मिश्रण है। कबीर और उनके शिष्यों ने पुरानी हिन्दी में लिखा है।

ग्रन्थ छन्द भी प्राचीन प्राकृत के समान हैं या कुछ नए बनाए गए हैं। उदाहरणार्थ—दोहरा, दुपदा, त्रिपदा, पंचपदा, अष्टपदी, श्लोक, हरखण, छन्द पउरी, सवाईया और गाथा वृत मिलते हैं। भाषा के उदाहरण हैं—

श्लोक :

कतंच माता कतंच वनिता विनोद सुतहं।
कतंच भ्रात मीत हित बन्धव, कतंच मोहु कुटुम्ब ते॥
कतंच चपल मोहिनी रूपं पेखते त्यागं करोति।
रहत संग भगवान सिमरनु नामक लब्ध्य अच्युत तनह॥

गाथा :

कपुर पुहुप सुगन्धा, वास मानुख्य देह मलीय।
मज्जा रुधिर दुरगन्धा नानक अस्थि गरबंग अग्यातयां ।।

नामदेव के बाद के महत्त्वपूर्ण हरिजन सन्तो में गोरा कुम्हार, सावता माली और चोखा मेला थे। इनमें पहले दो के बारे मे लक्ष्मण नारायण गर्दे ने परिचय दिये हैं--

"श्री ज्ञानेश्वरकालीन सन्तों में वयस में सब से बड़े गोरा जी कुम्हार थे। इनका जन्म तेरढोकी स्थान में सवत् १३२४ में हुआ। इन्हें सब लोग 'चाचा' कहा करते थे। ये बड़े विरक्त, दृढ निश्चयी और ज्ञानी भक्त थे। इनकी दो स्त्रियाँ थीं। भजनानन्द में तल्लीन होना इनका ऐसा था कि एक बार इनका एक नन्हा बच्चा इनके उन्मत्त नृत्य में पैरों तले कुचल-कर मर गया, पर इन्हें इसकी कुछ भी सुध न हुई। इससे चिढकर इनकी सहधर्मिणी सन्ती ने इनसे कहा कि अब आज से आप मुझे स्पर्श न करें। तब से इन्होंने उन्हें स्पर्श करना सदा के लिए त्याग ही दिया। सन्ती को बडा पश्चात्ताप हुआ और बडी चिन्ता हुई कि इन्हें पुत्र अब कैसे हों, और कैसे इनका वश चले। इसलिए उन्होंने अपनी बहन रामी से इनका विवाह करा दिया। विवाह के अवसर पर श्वसुर ने इन्हें उपदेश किया कि दोनों बहनों के साथ एक-सा व्यवहार करना। बस, इन्होंने नवविवाहिता को भी स्पर्श न करने का निश्चय कर लिया। एक रात को दोनों बहनों ने इनके दोनों हाथ पकड़कर अपने बदन पर रक्खे। इन्होंने इन दोनों हाथों को पापी समझकर काट डाला। इस तरह की कई बातें इनके विषय में प्रसिद्ध हैं। काशी आदि की यात्राओं से लौटते हुए श्री ज्ञानेश्वर-नामदेवादि सन्त इनके यहाँ ठहर गए थे। सब सन्त एक साथ बैठे थे पास ही कुम्हार की एक थापी पडी हुई थी। उस पर मुक्ताबाई की दृष्टि पडी। उन्होंने पूछा, 'चाचा जी! यह क्या चीज है?' गोराजी ने उत्तर दिया, 'यह थापी है, इससे मिट्टी के घड़े ठोंककर यह देखा जाता है कि कौन घड़ा कच्चा और कौन पक्का है।' मुक्ताबाई ने कहा, 'हम मनुष्य भी तो घड़े

ही हैं, इनसे क्या हम लोगों की भी कच्चाई-पक्काई मालूम हो सकती है ?" गौराजी ने कहा, 'हाँ, हाँ क्यों नहीं !' यह कहकर उन्होंने थापी उठाई और एक-एक सन्त के सिर पर थपकर देखने लगे। और सन्त तो यह कौतुक देखने लगे, पर नामदेव बिगड़े। उन्हें यह सन्तों का और अपना भी अपमान जान पड़ा। गौराजी थपते-थपते जब इनके पास आए तो इनको बहुत बुरा लगा। गौराजी ने इनके भी सिर पर थापी थापी और बोले, 'सन्तों में यही घड़ा कच्चा है' और नामदेव से कहने लगे, 'नामदेव ! तुम भक्त हो, पर अभी तुम्हारा अहंकार नहीं गया, जब तक गुरु की शरण में नहीं जाओगे तब तक ऐसे ही कच्चे रहोगे।' नामदेव को बड़ा दु:ख हुआ। वे जब पण्ढरपुर लौट आए तब उन्होंने श्री विठ्ठल से अपना दुःख निवेदन किया। भगवान् ने उनसे कहा, 'गौराजी का यह कहना तो सच है कि श्री गुरु की शरण में जब तक नहीं जाओगे, तब तक कच्चे रहोगे। हम तो तुम्हारे सदा साथ हैं ही, पर तुम्हें किसी मनुष्य-देहधारी पुरुष को गुरु मानकर उसके सामने नत होना होगा, उसके चरणों में अपना अहंकार लीन करना होगा।' भगवान के आदेश के अनुसार नामदेव जी ने श्री विसोबा खेचर को गुरु माना और गुरूपदेश ग्रहण किया। अस्तु, इस प्रकार गौराजी कुम्हार बड़े अनुभवी, ज्ञानी, भक्त और सन्त थे। उनके अभंगों में वेदान्त के पारिभाषिक प्रचुरता से आते हैं। और अनाहत ध्वनि 'सतरहवीं का उदक खेचरी मुद्रा' आदि अनुभव के संकेत भी मिलते हैं।"

गौरा कुम्हार के बारे में मुक्ताबाई का एक मराठी पद है :

'गोरा जुनाट पैं जुना।
हाती थापटणें अनुभवाचें॥
परब्रह्म म्हातारा निघाला अंतरीं।
वैराग्याचे वरी पान्हालला॥
सोहं शब्दें विरक्ति उजली।
पाती अणुभरी पाहिलें पणा।

हाथों में हस्तिदाँत की चूड़ियाँ और पैरों में चाँदी के कड़े पहनती हैं। ये मरे जानवर घसीटकर ले जाते हैं। धेड लोग लेव और देव दो भाइयों के वशज माने जाते हैं। पहले थूकने के लिए ये मटकियाँ गले में बाँधते थे और रास्ते में जो पैरों के निशान उभरते थे, उन्हें मिटाने के लिए हाथों में वृक्षों की टहनियाँ ले जाते थे। अधिकतर धेड़ बीजमार्गी, कबीर-पन्थी और रामानन्दी हैं। कुछ हरिबाबा के अनुयायी और कुछ स्वामी नारायण पन्थी हैं। उनके कुल-देवता नहीं होते। उनके देवालय गाँव के बाहर होते हैं। ये बच्चे का नाम पाँचवें दिन रखते हैं। इनमें खिमो और शिवों दो साधु हो गए हैं।"

इस जाति का यह बीसवीं सदी का रूप है। पता नहीं चोखा मेला के समय में क्या दशा रही होगी। उस समय चोखा ने कहा था .

हीन यातो माझी देवा।
कैसी घड़े तुझी सेवा॥
मज़ दूर-दूर हो म्हणती।
तुज भेटू कवण्या रीति॥
माझा लागताची कर।
सितौड़ा घेताती करार॥
माझा गोविंद गोपाला।
करुणा भाकी चोखा मेला॥

अर्थात् मेरी जाति हीन है। हे भगवान् तेरी सेवा कैसे करूँ ? मुझे सब दूर-दूर होने के लिए कहते हैं। तुझे किस तरह से मिलूँ ? मेरा हाथ लगते ही ये सवर्ण नहाते हैं। हे मेरे गोविंदा गोपाला ! चोखा मेला करुणा माँगता है।

'सन्त-काव्य-समालोचना' ग्रन्थ के लेखक प्रो० ग० ब० ग्रामोपाध्ये के अनुसार उस समय महारों का काम लगान-वसूली भी होता था। उसके विषय में चोखा ने एक रूपक लिखा था :

कोपटी तलपठी गाई ।
हाडाची वेढी पडेल पायी ।
तोंड चुकविता इज्जत जाई ।
मग वाचोंनिया । काय जी माय वाप ।
जोहार पाटील बाजी ।
चावडी चलाना काजी ।
ऐसे सागत आलों आजी ।
बहुत चाकी थकली जी । की जी माय वाप ।।
हिमायत येथें न चले काही ।
दुस्तर वार्ता पुढें भाई ।
वरते पाय खाली डोई ।
नव महीने होईल । की जी माय वाप ।।

दासी जनाबाई के अभग बहुत भावपूर्ण हैं। परन्तु उनमें तत्कालीन समाज स्थिति के अंदाज कम मिलते हैं। इन्हीं सन्तों पर अर्हत्, अवधूत आदि सप्रदायों की छाया पडी, और अलखनामी वैरागी भी इन्हींसे निकले हैं।

: ४ :

मध्यकालीन साहित्य

प्राचीन साहित्यिक परम्परा की अन्तिम शृखला के रूप में हम मुक्तेश्वर का स्मरण कर सकते हैं। निश्चित रूप से इनके जीवन-चरित के विषय में सामग्री नही मिलती, फिर भी अनुमान है कि आप एकनाथ के भानजे होंगे। आपका काल १६०० से १६५० ईस्वी के करीब रहा होगा। आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'महाभारत'। वह सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं। केवल आदि, सभा, वन, विराट्, सौप्तिक ये पाँच ही पर्व उपलब्ध हैं। इधर अ० का० प्रियोलकर ने मुक्तेश्वर के 'महाभारत' का आदि पर्व बडी खोज-बीन से प्रकाशित किया है। मराठी के प्राचीन साहित्य के विशेषज्ञ और आलोचक स्व० पागारकर मुक्तेश्वर की वाणी में लोकोत्तर प्रसाद, दिव्य ओजस्विता और सृष्टि-सौन्दर्य-वर्णन की अनुपम शोभा पाते हैं। मुक्तेश्वर की भाषा, देश और धर्म का अभिमान और अनुराग अलौकिक था। मुक्तेश्वर की सबसे बडी विशेषता है आख्यानक कविता का आरम्भ। यदि ज्ञानेश्वर सन्त साहित्य के भित्ति-चालक थे तो मुक्तेश्वर लौकिक साहित्य की नींव डालने वालो में मुख्य थे। मध्य-युग में आकर मराठी-काव्य जो अधिक लोकोन्मुख होता चला, उसके सबसे प्रमुख सहायक थे तुकाराम और रामदास।

'सन्त तुकाराम' नामक चित्रपट मे और हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा

प्रकाशित डॉ० ह० रा० दिवेकर की 'तुकाराम'-सम्बन्धी पुस्तक से अधिक परिचित, इस सन्त-कवि की संक्षिप्त जीवन-कथा यों है। १६०८ ई० में तुकाराम और रामदास दोनों का जन्म हुआ। पूना के पास इन्द्रायणी नदी के किनारे देहगाँव में तुकाराम बोल्होबा आंबिले का जन्म हुआ। इनकी जाति शूद्र (कुनबी) थी, और इनका कुल बनिए का धन्धा करता था। सावजी और कान्होबा तुकाराम के दो भाई थे। तुकाराम ने दो बार विवाह किया; वे अपनी दुकान और गिरस्ती ठीक तरह से न चला सके। उनकी दृष्टि ईश्वर-भक्ति की ओर थी। तिस पर अकाल आया। तुकाराम पूर्णतः वैराग्य की ओर झुक गए।

तुकाराम ने अपनी सब रचना 'अभंग' नामक भजनोपयोगी छन्द में की है। यह अधिकांशतः स्फुट है। नामदेव के समान ही भक्तिपरक आर्तता और उपालम्भ से भरी उनकी रचना है। परन्तु जहाँ नामदेव शुद्ध सन्त थे, तुकाराम ने कबीर के समान व्यावहारिक धर्म की दाम्भिकता को भी आड़े हाथों लिया है। कबीर की ही भाँति तुकाराम की रचनाएँ लोकोक्ति-रूप बन गई हैं। वास्तविक जीवन के यथार्थ दृष्टान्त लेकर बड़े-बड़े नीति-तत्त्व सहजता से समझाने की उनकी कुशलता बहुत ही प्रशंसनीय है। उनके जीवन-काल में उन्हें विरोधियों का कम सामना नहीं करना पड़ा। उनका निर्वाण-काल १६५० ईस्वी माना जाता है।

देशस्थ ब्राह्मण-कुल में, सूर्याजी पन्त कुलकर्णी के पुत्र रामदास, गोदा-नदी के तीर पर जाम्बगाँव में जन्मे। बचपन से वे काफी उद्दत थे। विवाह-प्रसंग में वे मंडप से भाग गए। आगे चलकर आपकी शिवाजी राजा से भेंट हुई और शिवाजी ने उन्हें गुरु माना, यह आख्यायिका प्रसिद्ध है। फिर तो वे आजीवन धर्म-प्रचार करते रहे। उन्होंने कई मठ स्थापित किए। राम-भक्ति इनका मुख्य जीवन ध्येय था। सातारा के पास 'परली' और 'चाफल' रामदास के प्रमुख स्थान थे। आपने अपना एक सम्प्रदाय चलाया। आपका सर्वोत्तम ग्रन्थ है 'दासबोध'। इसके पहले सात दशकों और बाद के तेरह दशकों के बीच में बहुत-सा रचना-कालान्तर बीता होगा, ऐसा

माना जाता है। यह ग्रन्थ निवृत्तिवादी नहीं है, निर्गुणिए सन्तों की तरह यह ब्रह्म-माया की सूक्ष्म छान-बीन में नहीं पडता। यह ग्रन्थ ओजस्वी भाषा में पूर्णतः प्रवृत्तिवादी है। इसका कारण तत्कालीन परिस्थिति थी। वह काल शिवाजी की राज्य-स्थापना का था। हिन्दू जनता मुस्लिम शासकों से सीधा विरोध कर रही थी—उसमें धर्म एक प्रधान अस्त्र था। रामदास की वाणी ने उस अस्त्र को धार दी। रामदास की बानी अटपटी है। वह व्याकरण-दोष, भाषा-दोष, छन्द-दोष, काव्य-दोष किसी की चिन्ता न करती हुई बराबर ऊर्जस्वल वेग से बहती है। उसमें अजीब-अजीब नए शब्द-प्रयोग मिलते हैं। कई ग्रामीण शब्द भी उसमें चले आए हैं। परन्तु सम्पूर्णतः लेने पर रामदास की रचना बहुत ही प्रभावशाली है। 'दासबोध' में मूर्ख, पडित, कवि, भक्त, राजा सबके लक्षण गिनाए गए हैं। राजनीति पर उनका जो एक दशक है, जिसे मैंने पूरा-का-पूरा 'आगामी कल' में 'एक कार्यकर्ता को पत्र' नामक शीर्षक से शब्दशः अनुवादित करके प्रकाशित किया था, वह एक अमर सत्य से प्रज्वलित रचना है। इस 'दासबोध' के अलावा 'मनाचे श्लोक' 'रामायण' के 'सुन्दर काड' और 'युद्ध काड', 'आनन्द-भुवन' नामक महाराष्ट्र के भूप्रदेश-सौन्दर्य-वर्णनात्मक ग्रन्थ, 'करुणाष्टक', 'पचीकरण', 'आरतियाँ', 'ओवियों' के १४ शतक आदि कई ग्रन्थ उनके प्रसिद्ध हैं। 'दासगीता' नामक एक सस्कृत-काव्य-पद्य भी उन्होंने लिखा था। सज्जनगढ पर १६८१ ईस्वी में आपने समाधि ली। आपकी शिष्य-परम्परा में प्रमुख कवि जयराम, रंगनाथ, आनन्द-मूर्ति और केशव ये चार स्वामी मिलाकर 'रामदास पचायतन' पूरा होता है। ज्ञान-पंचायतन, नाथ-पचायतन और दास-पचायतन के साथ सन्त-कवियों की परम्परा सत्रहवीं सदी में आकर समाप्त होती है और हिन्दी-साहित्य में जिस प्रकार भक्ति-काल के पश्चात् रीति-काल आता है और उसका आरम्भिक रूप केशवदास-जैसे भक्ति-रीति को मिलाने वाले कवियों में मिलता है, उसी प्रकार मराठी साहित्य में भी भक्ति-काल से रीति-काल की शृंगारी-वीर-प्रवृत्तियों तक (मतिराम-भूषण-जैसे 'लावणी-पोवाड़े' लिखने वाले

शाहीरों तक) सीधी रेखा नहीं मिलती—वह बीच-बीच में पंडित-कवियों द्वारा खंडित है। लालजी पेंडसे के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'साहित्य और समाज-जीवन' (जिसमें मराठी साहित्य का इतिहास समाजवादी दृष्टिकोण से दिया गया है) में इन तीन प्रकार के कवियों को (जिनके रस भक्ति, शान्ति, शृङ्गार और वीर आदि थे) बहुत ही सुन्दर ढंग से तीन नामों में संक्षिप्त किया गया है—सन्त कवि, पन्त-कवि, तन्त-कवि। पन्त पण्डित का छोटा रूप है और तन्तु वाद्यों के साथ (डफ, इकतारा आदि) गाने वाले होने से 'तन्त' या कहिए 'तन्त्र' अथवा 'रीति' की उनमें प्रधानता है, इस कारण से 'तन्त'।

प्रत्येक साहित्य के इतिहास में सिद्धान्तों के उत्थान-पतन का लेखा अनिवार्य रूप से आता ही है। जो आदर्श एक युग में पूजे जाते हैं, वे दूसरे युग में निर्माल्यवत् बन जाते हैं और नए आदर्श उनका रिक्त स्थान ग्रहण करते हैं। इस एक के खंडन में से दूसरे के निर्माण के संक्रान्ति-काल का साहित्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। आज तो ऐसे काल का अध्ययन इसलिए और भी आवश्यक है कि हमारा भारतीय साहित्य भी ऐसे ही बौद्धिक अराजक, मत-मतान्तरों के मन्थन में से गुज़र रहा है। अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में ऐसे काल-खंड को 'डिकेडेंट' कहते हैं, जिसका शब्दशः अर्थ होता है 'जीर्ण-शीर्ण या गलित'। 'जीवन' की उद्दाम तरल वेगमयी प्रवहमानता को यदि रूढ नियमों के और परिस्थितियों के कृत्रिम बन्धन से रोकने का प्रयत्न किया तो कुछ अवकाश के बाद उसमें की गतिमयता नष्ट होकर, एक विकृत स्थिरता, एक प्रकार की सड़ाँध, एक प्रकार की साहित्य की आत्म-भावना को गौणत्व देकर उसके बाह्य वेश-भाषा, टेक्नीक (रीति) आदि से उलझने की प्रवृत्ति अनजाने ही साहित्य में घुस पड़ती है जो एक ओर अतिशय हानिकर है तो दूसरी ओर एक अपरिहार्य बुराई के रूप में लाभप्रद भी होती है। रामदास के पश्चात् वामन पण्डित और उनके पश्चाद्वर्ती कवियों का काल इसी प्रकार का था। सन्त-कविता जब एक भँवर में पड़ी-सी जान पड़ी तब उसे झकझोरकर

तुकाराम ने पुनः उसमें सजीवता पैदा की। रामदास ने कविता की उस सजीव गति में अतिरेक निर्मित करके जैसे उसे पुन. विमूर्छा में डाल दिया। विमूर्छन-काल का स्वप्न-रजन, हमें वामन पण्डित, रघुनाथ पण्डित और मोरोपन्त की सुघर, नक्काशी भरी, अति-अलकृत कविता में मिलता है। जब अँग्रेजी साहित्य में भी रोमैंटिक युग की आरम्भिक ताजगी कुम्हलाकर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ऐसी ही प्रवृत्ति चल पडी तब 'प्री रैफेलाइट' कवियो की अलकरण प्रियता स्विन्बर्न आदि में अत्यधिक मात्रा में फूट पडी और हिन्दी में भी बिहारी, देव, पद्माकर के दोनों-कविनों मे उस सुघ-राई के वर्ण चमत्कार के अतिरिक्त और है भी क्या ? क्या इधर के कवियों की 'गीत'-रचना में पुन. छायावाद के अतिरेक की वैसी ही विमूर्छना, वैसी ही श्रान्ति और एकस्वरता (मोनोटोनी) नहीं मिलती ? 'स्टीफैन स्पेंडर' का 'स्टिल मेटर' मानो सभी ओर ऐसे साहित्यिक काल-खडों मे अनुगुञ्जित है। वामनपण्डित भी ऐसी ही शाब्दिक नक्कासी के लोभी कवि थे। निस्सशय उनकी रचना अतिशय नाद-मधुर है। जयदेव और विद्यापति की वह याद दिलाती है। परन्तु कहीं न-कहीं ऐसा जान पडता है कि भाव भाषा में खो गए हैं, भाषानुवर्ती भाव हो रहे है, जैसे कि महादेवी की उत्तरकालीन रचना मे। परन्तु मराठी साहित्य की कहानी के सिलसिले मे कुछ व्यक्तिगत मत कह रहा हूँ, जिन्हें पाठक अप्रासगिक न मानेंगे,ऐसी आशा है।

वामनपण्डित शेषे नादेड गाँव का था। वह सस्कृत का उद्भट पण्डित था। उसका बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है 'यथार्थदीपिका', जो कि ज्ञानेश्वरी की ही भाँति गीता की टीका है। 'भावार्थदीपिका' उस टीका की और टीका है। 'गजेन्द्र मोक्ष' (रामदास के शिष्य रगनाथस्वामी द्वारा लोकप्रिय बनाए गए विषय पर भाव-प्रचुर रचना), 'सीता-स्वयवर', 'कात्यायनी-व्रत', 'वन-सुधा' और 'राधा विलास' वामनपण्डित के अन्य भाव-प्रधान ग्रन्थ हैं। वामनपडित की कविता से मराठी काव्य मे विचार और भावना जैसे दो शैलियाँ ग्रहण करते है और सन्तो द्वारा परिचालित विचार-भावना का मधुर ऐक्य मानो टूट जाता है। वामनपण्डित के समकालीन नागेश और

विट्ठल ने श्लोक-शैली में 'सीता-स्वयंवर' और 'रुक्मिणी-स्वयंवर' काव्य रचे हैं। रघुराम, आनन्दतनय और रघुनाथपण्डित (जिनके निश्चित काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है) इसी प्रवृत्ति के उत्तरकालीन कवि हैं। रघुनाथपण्डित का 'नल-दमयन्ती-स्वयंवराख्यान' नरोत्तमदास के 'सुदामा-चरित्र' की भाँति रसयुक्त और प्रसंगों का यथातथ्य चित्रण करनेवाला अनेक छन्दों में लिखा ग्रन्थ है। चक्रेश्वर बापा, निरंजनमाधव, सामराज, श्रीधर, महीपति आदि अन्य कई कवियों के पश्चात् महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय कवि हैं मोरोपन्त (१७२९–१७९४ ईस्वी)।

मोरोपन्त रामचन्द्र पराडकर पन्हालगढ़ के थे। केशव पाध्ये उनके गुरु थे। बाद में पेशवाओं के सम्बन्धी और साहूकार बाबू नाइक के घर आपने कथावाचनी की। कुछेक काल मुन्शी भी रहे। आपने समग्र महाभारत, भागवत, रामायण 'आर्या' वृत्त में मराठी में उतारे परन्तु रामायण, मन्त्र-रामायण आदि १०८ रामायण आपने लिखे थे, ऐसा कहा जाता है। 'कृष्ण-प्रसंग', 'सुदाम-प्रेम', 'वात्सल्य' और 'करुण' रस के प्रसंगों का वर्णन आपने बहुत ही कमाल के साथ किया है। आपकी रचना अधिकांशतः संस्कृत-समास-बहुल है। आप अपने गुणों के लिए बहुत ही प्रसिद्ध हैं। 'ईश्वर-स्तुति' व 'पृथ्वी सूक्त' के पद्यों तथा काव्य आपकी स्वतन्त्र रचना हैं। पेशवाओं के शासन-काल के उत्तर काल में कुछ कवि हो गए, जिनमें से प्रमुख मुख्य नाम हैं—नारायण कवि, दार्शनिक जोशी, रामचन्द्र रघुनाथ सन्त काशी, माहिरोशानाथ श्रीनिवे आदि। इनमें अन्तिम कवि मिथिला के दरबार में थे। वह गोआ की ओर के रहने वाले थे और 'महानुभवैश्वर्य' नामक उनकी रचना रहस्यवादी है। उनकी हिन्दी-रचना पर मैंने 'आज' में एक लेख लिखा था।

इन पन्त-कवियों ने कविता को यान्त्रिक और दुर्बोधात्मक बना डाला तब स्वाभाविक रूप से कविता के रचनाकारों में दो वर्ग निर्मित हो गए। एक ओर तो बड़े-बड़े विद्वान्, व्युत्पन्न संस्कृत पण्डित थे, दूसरी ओर थे जन-कवि। जनता का कवि वीरों की गाथा गाता था और गिरहियों के

मनोरंजन के लिए शृङ्गारपूर्ण नाट्यात्मक भाव-गीत भी लिखता था। वह कभी-कभी पण्डित कवियों की नकल में तुकों का जाल बिछाता, दूसरी ओर भाषा की चिन्ता न करते हुए उर्दू के रंग में इश्किया शायरी का निर्माण करता, नाज़ुक-खयाली और बन्दिश में उलझता, तो तीसरी ओर महाराष्ट्र के भूमिगत और जातिगत रीति-रिवाजों, लोकोक्तियों, वाक्य-प्रचारों, रहन-सहन की वैशिष्ट्यपूर्ण पद्धति का हूबहू चित्रण करता। इस कारण से शाहीर कवियों के वीर-श्रीपूर्ण 'पोवाडे' (आल्हा के ढंग पर 'बैलेड्स') जहाँ एक ओर श्रवणीय हैं वहाँ दूसरी ओर उन्हींकी शृङ्गार से भरपूर, कभी-कभी तो ऐसी अश्लील 'लावणियाँ' (कजरी, होली-जैसे गीत) चित्र-काव्य की सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। शाहिरों ने मराठा-पेशवा-राज्य के उत्तर काल के रण-रंग और रस-रंग का यथार्थ प्रतिबिम्ब बिना किसी लाग-लपेट के कविता में उतार रक्खा है। ग्राम-गीतों की उस परम्परा को, जो पण्डित कवियों के विद्वत्ता के ग्रीष्मातप में सूखती जा रही थी, शाहिरों ने पुनर्जीवन दिया, पुनः हरा-भरा किया। भारतेन्दु ने भी कुछ लावनियाँ लिखी हैं।

अब तक उपलब्ध ऐतिहासिक गेय वीर-काव्य 'पोवाडे' २०० हैं। शिवा-काल से साहू तक के सात, पेशवा-काल के डेढ़-सौ और बाकी १८०० ईस्वी के बाद के। उनमें अज्ञानदास का 'अफजलखाँ वध' और तुलसीदास का 'तानाजी मालुसरे' का पोवाड़ा बहुत प्रसिद्ध है। दोनों शिवाजी-कालीन हैं। दूसरे काल-खण्ड में पानीपत के संग्राम (१८१८ ईस्वी) और खर्डा की लडाई को लेकर बहुत-से पोवाडे हैं। ये शाहीर भाट-चारणों की भाँति गुणीजनों के आश्रित थे। उत्तर-पेशवाई के जो शाहीर प्रसिद्ध हैं, उनमें प्रमुख हैं—रामजोशी (१७५८–१८१२ ईस्वी), कीर्तन कार, अनन्तफंदी (१७४४–?) होनाजी बाला, ग्वाला सगनभाऊ 'तमाशा' वाले (?–१८४०) शिकलगर मुसलमान, प्रभाकर दातार (१७५४–१८४३), परशुराम दर्जी। विभिन्न जातियों के ये जन-कवि आधुनिक मराठी कविता की नींव बनाने वालों में मुख्य हैं। होनाजी की कविता में उत्तान-शृङ्गार होने पर भी मधुरता खूब है। प्रभाकर की रचनाएँ स्मरणीय हैं।

: ५ :

काव्योत्थान के तीन युग

प्रथम उत्थान

१८१८ ईस्वी तक मराठी कविता जो बहुत उन्नति पर थी धीरे-धीरे उसमें सामाजिक राजनीतिक परिपार्श्व के अनुसार पतनोन्मुखता दिखाई देने लगी। शाहीर कवि—जो कि जनता में लोकप्रिय 'तमाशे' (एक प्रकार का काव्य-पाठ) करते, वे उतना शृङ्गारपरक लावनियाँ अधिक लिखने लगे। 'पोवाडे'-रचना की प्रवृत्ति भी थी तो केवल अतीतोन्मुखी। राजनीतिक दृष्टि से यह बहुत आन्दोलनपूर्ण काल था। अस्थिर जीवन के कारण कविता में किसी स्थिर प्रवृत्ति के दर्शन कम मिलते हैं। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् सन् १८८५ से हम मराठी की आधुनिक कविता का आरम्भ मान सकते हैं। जैसे उर्दू में हाली या हिन्दी में भारतेन्दु या गुजराती में नर्मद, वैसे मराठी में 'केशवसुत' से नव जागरण का आरम्भ हुआ। कृष्णाजी केशव दामले (१८६६-१९०५) 'केशवसुत' का पूरा नाम था। इनके पूर्व जो मराठी कविता हुई थी वह अधिकांशत: इतिवृत्तात्मक और अंग्रेजी की अनुकरण-पद्धति पर थी। उसमें जातीय विशेषता नहीं मिलती। केशवसुत ने अपनी 'तुतारी' ('तुरही' या 'तूर्य') नामक कविता से मराठी में राष्ट्रीय, स्वातन्त्र्योन्मुखी कविता का शंखनाद किया। कवि को उन्होंने समाज में पुनः प्रतिष्ठित किया। उनकी कई प्रसिद्ध पंक्तियाँ सन्देश बन गई हैं।

यथा

"प्राप्तकाल विशाल भूधर के समान है। उसमें सुन्दर शिल्पाकन करो। उसमे अपने नाम लिखो।"

"दम्भ पर हमला करो। विद्रोहियो, त्वरा करो। समता का ध्वज ऊँचा करो।"

परन्तु केशवसुत के मन पर वर्ड्सवर्थ आदि अग्रेजी के आरम्भिक रोमैंटिक कवियो की छाया प्रबल थी और समाज-सुधार से अधिक वे अपनी कविता मे कुछ विशेष न कर पाये। केशवसुत के पश्चात् दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले कवि रेवरड ना० वा० तिलक (१८६५-१९१९) हुए। आप ईसाई थे। फिर भी आपने 'वनवासी फूल', 'खिस्तायन' आदि के द्वारा मराठी कविता की जो अमूल्य सेवा की है वह अद्वितीय है। आपकी कविता मे मानवतावाद कूट-कूटकर भरा है। ईसाइयो की-सी प्राणी-मात्र के लिए अनुकम्पा, दार्शनिक पुट लिये हुए कुछ गूढ रम्यता तथा आस्तिकताजन्य आशावाद उनकी विशेषताएँ हैं। मराठी काव्य के प्रथम उत्थान के तीसरे महत्त्वपूर्ण कवि हैं श्री चन्द्रशेखर (१८७१-१९३७)। आप बड़ौदा के राज-कवि थे। कविता रति आदि सस्कृत छन्दों में रची। आपकी कई फुटकर कविताएँ 'चन्द्रिका' नामक सग्रह मे प्रकाशित हुई हैं। आपने मिल्टन के 'लेलेग्रो' और 'इलपेन्सेरे सो' के अनुवाद किए हैं। एक ग्रामीण भाषा में लिखा हुआ 'काय हो चमत्कार' नामक आर्याबद्ध खण्डकाव्य आपकी सर्वोत्तम रचना है। आपकी तुलना हिन्दी के 'श्री हरिऔध' से की जा सकती है। प्रथमोत्थान के चौथे कवि है 'विनायक' (१८७२-१९०९)। आपकी शिक्षा विशेष नहीं हुई, जीवन भी अस्थिर रहा, परन्तु आपने उच्च कोटि की राष्ट्रीय रचनाएँ की हैं। सभी रचना प्रधानत गीति-काव्यात्मक हैं। विशेषत आपकी 'हतभागिनी', 'स्त्री और पुरुष', 'कवि और तोता' आदि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। 'कमला' नामक एक ऐतिहासिक काल्पनिक खण्डकाव्य लिखने वाले प्रथमोत्थान के पाँचवे उल्लेखनीय कवि श्री नारायण मुरलीधर गुप्ते हैं। आपने 'बी' (BEE) नामक अग्रेजी उपनाम से सब कविताएँ

लिखीं। आपका जन्म १८७२ में हुआ। अभी जीवित हैं। आपकी रचनाएँ १९३४ में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुईं। श्री अत्रे ने उनकी रचनाएँ संग्रहीत और सम्पादित की हैं। आपने बहुत कम कविताएँ लिखीं, परन्तु जितनी लिखीं वे एक-से-एक बढ़कर हैं। एक प्रकार से आधुनिकतम कविता का आरम्भ आप ही से हुआ। आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं 'उषा', 'टीप', 'ज्योति', 'चाफा', 'माझी कन्या' आदि।

द्वितीय उत्थान

इसके अन्तर्गत प्रमुख कवि ताँबे, गडकरी उर्फ 'गोविन्दाग्रज', ठोंबरे उर्फ 'बालकवि', रेंदालकर और वि० विनायक दामोदर सावरकर हैं। भास्कर रामचन्द्र ताँबे (१८७४-१९४१) ग्वालियर के राज-कवि थे। आपने कुछ बहुत ही मधुर प्रेम गीत लिखे हैं। राजस्थान तथा मालवा का प्रादेशिक प्राकृतिक रंग आपकी रचनाओं में मिलता है। रवीन्द्रनाथ की शैली पर आपने ससीम-असीम का आभास देने वाली रहस्यवादी रचनाएँ भी की हैं। आपके कई गीत, यथा—'मरणात खरोखर जग जगते', 'कुणि कोडे माझे उकलिल का' और 'साम्राज्यगादी' आदि बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

राम गणेश गडकरी (१८८५-१९१९) प्रमुखतः नाटककार के नाते प्रसिद्ध हैं। आपकी प्रतिभा अनेक रूपों में स्फुटित हुई। आपने 'बालकराम' के नाम से कुछ हास्यपूर्ण निबन्ध भी लिखे हैं। परन्तु आपकी सभी रचनाओं में उनकी भावनात्मक मनोवृत्ति का गहरा असर है। 'गोविन्दाग्रज' के नाम से गडकरी ने कविता लिखी। उनमें बायरन-जैसी उत्कट भावुकता, गहरी करुणा और गहरा शृङ्गार मिलता है। 'राजहंस माझा निजला', 'गुलाबी कोडे', 'मुरली', 'उत्तर', 'दसरा', 'कवि आणि वेडा' आदि कई रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। कहीं-कहीं ऊँची दार्शनिक उड़ान, कहीं प्रकृति का अत्यन्त सजीव वर्णन और कहीं मनोभावनाओं का सूक्ष्म हृदयस्पर्शी वर्णन आपकी कविताओं में मिलता है। प्रेम की निराशाजन्य कटु आहट भी कई गीतों में है। अनुप्रासों की बहुत सुन्दर छटा सर्वत्र पाई जाती है।

माधुर्य-प्रधान मराठी कविता की इस दूसरी धारा के तीसरे अत्यन्त कोमल कवि हैं त्र्यम्बक बापू जी ठोंबरे उर्फ 'बालकवि' (१८६०–१९१८)। आपने प्रकृति-प्रेम की ही अधिक रचनाएँ की हैं। इन्हें मराठी का सुमित्रा-नन्दन पन्त कह सकते हैं। 'सन्ध्यातारक', 'निर्झर', 'पाऊस', 'फुलराणी', 'श्रावणमास', 'ताराराणी', 'काल आणि प्रेम' ये आपके विषय हैं। आप सौन्दर्यवादी हैं और पन्त जिस प्रकार 'सुन्दरतर से सुन्दरतम' सारी सृष्टि को देखते हैं, वैसे ही बालकवि भी 'आनन्दी आनन्द गडे', 'इकडे तिकडे चोंहिकडे' सर्वत्र आनन्द के दर्शन करते हैं। भारत के विषय में वे 'देहात में एक रात' कविता में कहते हैं—

"हम्मालों का (कुलियों का) यदि कोई राष्ट्र है—तो वह हिन्दभूमि है। हे मन, यह दैन्य, यह दौर्बल्य देखा नहीं जाता। हिन्दभूमि की व्यथा सहन नहीं होती।"

एकनाथ पाडुरंग रेंदालकर (१८८६–१९२०) मराठी में मुक्तछन्द और अतुकान्त रचना के प्रथम प्रवर्तक हैं। आपकी रचना में स्वाभाविकता विशेष है। 'रुक्मिणी पत्रिका', 'कृष्णा', 'बसन्त', 'उजाड़ मैदान', 'निगाड' आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। परन्तु 'प्रसाद' के आँसू की भाँति आपकी रचनाओं में करुण-रस की अन्तर्धारा सतत प्रवहमान है। यदि माधुर्य तॉंबे और गोविन्दाग्रज में मिलता है तो प्रसाद गुण बालकवि और रेंदालकर में। बचा हुआ ओज गुण बा० विनायक दामोदर सावरकर—जो अपने क्रान्तिकारी राजनीतिक जीवन के कारण भारत-विख्यात हैं—की रचनाओं में मिलता है। सावरकर के कवि को सावरकर का राजनीतिक व्यक्तित्व खा गया और मराठी साहित्य ने एक बहुत अच्छे महाकवि को खो दिया, यह खेद से कहना पड़ता है। 'रानफुलें' और हाल में प्रकाशित उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में—'युगातरीचा घोष', 'जगन्नाथाचा रथोत्सव', 'माझे मृत्युपत्र' 'सागरा, प्राण तलमलला', 'सप्तर्षि' आपकी ऐसी रचनाएँ हैं जो विश्व-साहित्य में गर्व का स्थान प्राप्त कर सकती है। आपने 'वैनायक' तथा 'कमला' नामक दो खंडकाव्य भी लिखे हैं। आपकी प्रतिभा

'क्लासिक' अथवा 'आभिजात्य' लिये हुए है। आप 'महा समर' नामक एक और काव्य लिख रहे थे। वह पता नहीं, अभी पूरा हुआ या नहीं।

प्रथमोत्थान में जहाँ रूढ़ियों के प्रति अनावश्यक मोह अथवा निर्भयता की अतिरेकपूर्ण वृत्ति प्रदर्शित हो रही थी, द्वितीयोत्थान में हमें अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों की भाँति एक प्रकार की ताजगी, प्रकृति के प्रति विशेष प्रेम, जातीयता तथा स्वदेश-भक्ति के दर्शन होते हैं।

तृतीय उत्थान

तृतीयोत्थान में मुख्य हाथ पूना की 'रवि-किरण-मण्डल' नामक सात कवियों की एक मण्डली का रहा। उनमें प्रमुख कवि थे और हैं—डॉ० माधव त्र्यंबक पटवर्धन उर्फ माधव जूलियन, यशवन्त दिनकर पेंढारकर उर्फ 'यशवन्त', शंकर केशव कानिटकर उर्फ गिरीश, घाटे आदि। 'माधव जूलियन' फारसी के प्रोफेसर थे और छन्द-शास्त्र पर आपने बम्बई-विश्वविद्यालय से मराठी की पहली डॉक्टरेट पाई। फारसी-पद्धति के कई छन्द आप मराठी में लाये—रुबाई, गजलों की कई किस्में आदि। आपने उमर खय्याम की रुबाइयों का मूल फारसी से समश्लोकी तथा फिट्जेराल्ड के अंग्रेजी अनुवाद से समश्लोकी अनुवाद मराठी में प्रस्तुत किया। 'सुधारक' नामक एक व्यंगपूर्ण खण्डकाव्य, 'विरह तरंग' नामक प्रेम-प्रधान खण्डकाव्य, प्रगीत मुक्तों से भरा 'तुटलेले दुवे' नामक दूसरा खण्डकाव्य केवल 'सुनीतों' में ('सुनीत' अर्थात् अंग्रेजी 'सानेट' या चतुर्दशपद का मराठी में रूढ़ किया हुआ शब्द) 'नकुलालंकार' नामक एक व्यंग काव्य के अलावा आपकी स्फुट कविता 'गज्जलांजली', 'स्वप्नरंजन', तथा उद्बोधन 'मधुमाधवी' में संगृहीत है। आपने उन्मुक्त प्रेम का समर्थन, सामाजिक दंभ का परिस्फोट राष्ट्रीय कर्तव्यों के प्रति तो किया ही, साथ ही अपनी कविता द्वारा मराठी में एक नवीन शैली, एक नवीन भाषा-सम्पदा को प्रचलित किया। रवि-किरण-मण्डल में आपकी मौलिकता सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। आपकी कई कविताओं के रेकार्ड भी बन गए हैं।

यशवन्त ने भी राष्ट्रीय और समाज सुधार पर कई कविताएँ लिखीं। 'बन्दीशाला' नामक एक खण्ड काव्य यरवदा की बच्चों की जेल पर और अपराधी बच्चों पर तथा 'जयमगला' बिल्हण के प्रेम-प्रसग को लेकर लिखा। इनके अलावा हाल में बडौदा-नरेश के राज्यारोहण-प्रसग पर 'काव्यकिरीट' खण्डकाव्य लिखा, जिससे वे बडौदा के राज-कवि नियुक्त हुए। परन्तु इन खण्डकाव्यों में उनकी प्रतिभा इतनी नहीं चमक उठती जितनी कि गीत काव्यात्मक फुटकर रचनाओं में। 'यशोधन', 'यशवन्ती', यशोनिधि', 'यशोगन्ध' आदि आपके कई सग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से 'आई', 'गुलामाँचे गाह्राणे', 'नजराण', 'मैतरणी भिगिभिगी चाल' 'घर', 'प्रेमाची दौलत' आदि आपके कई गीत बहुत लोकप्रिय हुए हैं। कुछ रचनाएँ आपने ग्रामीण भाषा में भी की हैं। बच्चों के मन का भी बहुत सुन्दर चित्रण कई कविताओं में किया गया है, यथा—'मालु नको ग', 'इदुकला', 'पल्याना भात' आदि।

रवि-किरण-मण्डल के अन्य कवि इतने प्रसिद्ध हुए। 'गिरीश' (काचन-गगा, फलभार, अभागी कमल, आँभराई, सुधा) अवश्य अपने खण्ड-काव्यों के कारण अधिक सफल कवि माने जाते हैं। रवि-किरण-मण्डल के सभी कवियों ने अधिकाशतः प्रेम-कविताएँ लिखीं। स्वातन्त्र्य प्रेम की प्रशसा उनकी रचनाओं में मिलती हैं। परन्तु जहाँ एक ओर उन्होंने मराठी में—कविता में नये नये विषयों पर रचनाएँ करने की यथार्थवादिता बढाई, वहाँ दूसरी ओर कविता को कुछ नई रूढियों में बाँध डाला। रवि-किरण परि-पाटी मराठी मे भाव-गीत के रूप में कई वर्षों तक ऐसी चलती रही कि उसकी प्रतिक्रिया में एक ओर माधवानुज, दु० आ० तिवारी, टेकाडे, वेहरे आदि ने ओजपूर्ण ऐतिहासिक सग्राम-गीत गाने शुरू किए (जो स्पष्टत. राष्ट्रीयता के प्रचार मे भरे हुए अधिक थे, काव्य उनमे कम था) दूसरी ओर प्रि० प्र० के० अत्रे उर्फ केशवकुमार ने अपनी पैरोडियों की प्रथा चलाई, जो 'झेंडूची फुले' के नाम से बहुत ही प्रचलित हुई। 'झेंडूची फुले' नामक एक अकेले सग्रह ने मराठी कविता में परिहासपूर्णता का वह प्रवाह

बढ़ा दिया कि एक दशक के अन्दर-अन्दर पुराने ढंग की कविता एकदम उपेक्षित बन गई।

अब इधर गत महायुद्ध के कुछ पूर्व से कवियों में 'सामाजिक चेतना' जाग्रत हुई है। कुसुमाग्रज (विशाखा), बोरकर (जीवन-संगीत) श्रीकृष्ण पोवले, बारे, वसन्त बैद्य, वसन्त बिवटे, ना० घ० देशपांडे, राजा बढे, संजीवनी मराठे आदि कई भावगीत-कवि आगे बढ़ रहे हैं, जो कि मराठी के गीतात्मक अनुर्वर प्रान्त को सँवार रहे हैं। कुसुमाग्रज इनमें विशिष्ट हैं। बोरकर 'महात्मायन' काव्य लिख रहे हैं।

स्व० सावरकर, कानेटकर 'गिरीश', भ० श्री पण्डित, 'अनिल', अनन्त काणेकर—सभी राष्ट्रीय चेतना के युग में उठी प्रतिभाएँ थीं।

यशवन्त के पश्चात् मराठी कविता में आधुनिकतम विचार-धारा और मुक्तछन्द का प्रवर्तन आत्माराम रावजी देशपांडे 'अनिल' ने किया। आलोचक दि० के० बेडेकर के कथनानुसार ज्ञानेश्वर, केशवसुत और 'अनिल' मराठी की आशावादी काव्य-परम्परा के तीन प्रमुख युग-निर्माता हैं। 'फुलवात' में 'अनिल' की कविता पर अध्यात्म की छाया स्पष्ट थी, परन्तु बाद में 'अनिल' की कविता उत्तरोत्तर प्रगतिशील होती गई। 'पेर्तेव्हा' में 'अनिल' की नवीनतम कविताएँ संकलित हैं। उनमें से दो-तीन 'नेहरू अभिनन्दन-ग्रन्थ' में भी छपी हैं। खण्डकाव्य 'भग्नमूर्ति' का मेरे द्वारा किया हुआ हिन्दी-रूपान्तर शीघ्र प्रकाशित होगा।

'अनिल' के बाद के दूसरे युग-निर्माता रचनाकार हैं बालकृष्ण सीताराम मर्ढेकर। अति-आधुनिक, अतियथार्थवादी तन्त्र का नवकाव्य मराठी में लाने का श्रेय मर्ढेकर को है; उनकी 'काही कविता' पर मराठी-साहित्य-क्षेत्र में बड़ा विवाद मचा। उनकी रचनाओं में आधुनिक मानव की बुद्धिवादी विफलता और कुण्ठित-दमित भावुकता के द्वन्द्व के तीव्र चित्र मिलते हैं। वे टी० एस० इलियट से प्रभावित कवि हैं। उनके 'नवकाव्य'-सम्प्रदाय में पु० शि० रेगे, प० ढ० भावे, विन्दा करन्दीकर, मनमोहन नातू, शरच्चन्द्र मुक्तिबोध आदि हैं। उनकी मौलिकता का यह प्रमाण है कि

प्राय. सभी आधुनिक कवि 'कुकुरमुत्ता' के बाद के 'निराला' की भाँति उनकी वक्रोक्ति और वाग्मिता का जाने-अनजाने अनुकरण कर रहे है। रेगे 'छन्द' नामक पत्रिका निकालते हैं।

परिशिष्ट कुछ मराठी कवियो के हिन्दी पद

मराठी के प्राचीन साहित्यकारो की हिन्दी-रचनाओ के कुछ उदाहरण हम नीचे दे रहे है—

१ **सोमेश्वर**—ये चालुक्यवशीय राजा थे, इनका लिखा हुआ 'मानसोल्लास' अर्थात् 'अभिलषितार्थ-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है। इस ग्रन्थ में कई भाषाओं के पद्यो के उदाहरण दिये गए हैं। लाटी भाषा के जो उदाहरण हैं, वे प्राचीन हिन्दी से मिलते-जुलते है। जैसे·

"नन्द गोकुल जायो कान्ह जो गोवी जणे पडि हेली रे नयणे जो विया धदणा मरया बिना ह्मणि हक्कारियौं कान्हों भरडा सो ग्राह्मणा चितिया देउ वुध रूपेण जो दाणवपुरौं वाचउणि (पू) रूपेण।"

महाराष्ट्र की प्राचीन हिन्दी का यही सबसे पुराना नमूना पाया जाता है। इस ग्रन्थ की रचना सन् ११३७ मे हुई थी।

२ **चक्रधर**—महानुभाव-पथ के सस्थापक तथा प्रथम आचार्य आप ही थे। इनके तथा इनके ५०० शिष्यों द्वारा लिखे हुए फुटकर पद्य तथा गद्य-ग्रन्थ ही मराठी की आदि-रचना कहे जाते हैं। आपके द्वारा लिखी गई हिन्दी-कविता का उदाहरण निम्न प्रकार है .

सुती वथी स्थिर होई जेणे तुम्ही जाई।
सो परो मोरो वैरी आणता काई॥

इनका समय सके ११६४ निश्चित है।

३ **दामोदर पण्डित**—आप चक्रधरजी के समकालीन और उनके शिष्य भी थे। आपकी ईश्वर-भक्ति-सम्बन्धी अनेक राग-रागिनियो की कविता पाई जाती हैं। ये बड़े श्रेष्ट कवि थे। इनकी रचना पर हिन्दी का काफी प्रभाव पाया जाता है

स्फुटिक मध्ये हीरा वेध कर गया।
उजयडा लापलो मिग कला॥

४. मुक्ताबाई—ये सन्त ज्ञानेश्वर की बहन थीं। आपने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी रचनाएँ की हैं। कुछ उदाहरण हम दे रहे हैं :

"वाह वाह साहब जी सद्गुरु लाल गुसाईं जी
लाल बीच सों उदला काला आँठ पीठ सों काला।
पीत उन्मनी भ्रमर गुम्फा रस झूलने वाला॥

× × ×

सद्गुरु चेले दोनों बराबर एक दस्त मों भाई।
एक से ऐसे दर्शन पाये महाराज मुक्ताबाई॥"

५ नामदेव—आप मराठी के श्रेष्ठ कवियों में से हैं। मराठी में आपकी रचनाएँ अत्यन्त उत्कृष्ट हैं ही। हिन्दी में भी आपके फुटकर पद्य पाये गए हैं। आपकी हिन्दी-रचना को सिक्खों के धर्म-ग्रन्थ साहब में भी स्थान मिला है। आपकी रचनाओं के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं :

"जहँ तुम गिरिवर, तहँ हम मोरा
जहँ तुम चन्दा तहँ हम चकोरा
जहँ तुम सरवर तहँ हम माछी
जहँ तुम दीपा तहँ हम बाती

× × ×

बेल के पाती शंकर पूजा
नामदेव कहे भाव नहीं दूजा॥"

६ भानुदास—ये बहुत बड़े वैष्णव भक्त और कवि थे। इनका समय सन् १५५० के लगभग माना जाता है।

"निलत बाल सकल ग्वाल, सुन्दर कन्हाई।
जागहु गोपाल लाल, जागहु गोविन्द लाल,
जननी बलि जाई।
सगी सब फिरत बयन, तुम बिनु नहि छूटत धेनु

तजहु सयन कमल नयन, सुन्दर सुखदाई
मुख ते पट दूर कीजो, जननी को दरस दीजो
दधि खीर माँग लीजो, खाँड और मिठाई।
झमत झमत श्याम रामसुन्दर मुख तव ललाम
थाती की छूट कछू भानुदास पाई॥"

७. तुकाराम—ये महाराष्ट्र के प्रसिद्ध साधु हो गए हैं। मराठी में आपके अभंग प्रसिद्ध हैं। मराठी के अतिरिक्त आपकी हिन्दी में भी कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं:

"तुका बडो वह ना तुले, जाहि पास बहु दाम।
बलिहारी वा बदन की, जेहिते निकसे राम॥
तुका कहे जग भ्रम परा, कही न मानत कोय।
हाथ परेगो काल के, मार फोरि है डोय॥"

८. श्री समर्थ रामदास—आप महाराजा शिवाजी के गुरु थे। आपकी रचनाओं के अतिरिक्त हिन्दी-रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। कुछ उदाहरण हम दे रहे हैं.

"चातुर चतुर को चटकारे
रसिक वचन जन दरशन मन में अजब लगत चटकारे।"

९. श्री शिवाजी महाराज—महाराजा शिवाजी स्वयं कवि भी थे। आपकी मराठी में कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त आपका एक हिन्दी-पद भी पाया जाता है, जो निम्न प्रकार है:

"जय हो महाराज गरीब निवाज
बन्दा कमीना कहलाता हूँ, साहिब तेरी ही लाज
मैं सेवक बहु सेवा माँगूँ, इतना है सब काज
छत्रपती तुम सेकदार "शिवा" इतना हमारा अर्ज।"

१० बयाबाई—इनका समय शके १६०० के लगभग माना जाता है। आपकी भी हिन्दी-रचनाएँ उपलब्ध है, जो स्त्री-लेखिका के नाते विशेष महत्त्वपूर्ण हैं·

"बाग रंगीला महल बना है
महल के बीच में झूला पड़ा है
इस झूलने पर झूलो रे भाई
जनम मरण की याद न आई
दासी क्या कहे गुरु भैया ने
मुझको झुलाया सो ही सुलावे ॥"

११. मोरोपन्त—आपसे सारा महाराष्ट्र पूर्ण परिचित है। इन्हें यदि मराठी का केशवदास कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। आपकी रचनाएँ विशाल और उत्कृष्ट हैं। आप हिन्दी के भी बड़े अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दी छन्द 'हरिगीतिका' का आपने ही सबसे पहले मराठी में उपयोग किया था। आपकी हिन्दी-रचना का एक उदाहरण निम्न प्रकार है:

"पकड़ो लियो, हलाको, ये विश्वामित्र भाग जावेगा।"

उपर्युक्त मराठी-साहित्य के प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त महाराष्ट्र के अनेक सन्तों और कवियों ने भी हिन्दी में रचनाएँ की हैं। यहाँ पर सबके नाम और उनकी रचनाएँ बताना कठिन है। सोहिरोबा आंबिये के मराठी पदों पर मैंने साप्ताहिक 'आज' में लिखा था। मराठी के प्रसिद्ध लावनीकार प्रभाकर, होनाजी बाल, राम जोशी, परशुराम आदि ने भी हिन्दी में रचनाएँ की हैं।

इस प्रकार हिन्दी का आधुनिक काल आरम्भ होने तक महाराष्ट्र में हिन्दी-विकास की परम्परा रही है। इसके बाद आधुनिक काल में भी उसकी परम्परा ज्यों-की-त्यों प्रगति कर रही है। आधुनिक खड़ी बोली का भी महाराष्ट्र में काफी विकास हुआ है। मराठी के अनेक विद्वानों और साहित्यकारों ने हिन्दी में अपनी रचनाएँ करके उसे विकसित किया है। उदाहरणार्थ स्व० माधवराव सप्रे, स्व० आगरकर, स्व० बाबूराव विष्णु पराड़कर, श्री० दा० सातवलेकर, काका कालेलकर, विनोबा भावे, अ० गो० शेवड़े, ग० मा० मुक्तिबोध, मोघे, चितारे, वैशंपायन इत्यादि। थोड़े दिनों से महाराष्ट्र में हिन्दी की अनेक प्रचार और प्रकाशन-संस्थाएँ प्रारम्भ हुई हैं, जिनके द्वारा महाराष्ट्र में हिन्दी के विकास को और भी बल मिलने की आशा की जाती है।

: ६ :

पाँच आधुनिक कवि

दोआबे के उर्वर प्रान्त को महाराष्ट्र की रूक्ष कष्टप्रियता की कल्पना कदाचित् ही होगी। जीवन की कटु-कठोर जीवन-कलह की प्रत्यक्ष चेतना महाराष्ट्र भाषा और मराठी-साहित्य में सदैव एक विधायक शक्ति के रूप में जागरित रही है। एक कारण शायद यह भी हो कि महाराष्ट्र सत्ता-धारी शासक रह चुका था। पर हर्षवर्धन के बाद हिन्दी-भाषी स्वय शासन-सूत्रधार कभी न बनकर इस्लामी या ब्रिटिश राज्य के शासित रहे। हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-कविता क्रमश. जन-जीवन से विमुख, सम्बन्ध-रहित बनती चली। सामन्ती सस्कृति की विलास-प्रियता और इस्लामी-काव्य की कल्पना-जीवी रीति-प्रधानता हिन्दी में अनजाने घर कर गई। पर इन सब प्रभावों के विरोध में आन्दोलन-सा लेकर चल पड़ा। महाराष्ट्र सप्राण, आघात-उद्यत, वास्तव-संलग्न और जीवन की अपेक्षाओं का हमेशा ही ध्यान रखने वाला रहा। मनोभूमि के इसी भेद से मराठी और हिन्दी की कविता का आन्तरिक अन्तर पहचाना जा सकता है।

हिन्दी की आज की कविता ने बोलपुर से बही बहन-बगला को ऐसी ही अप्रत्यक्ष 'मलय-बयार' माना। हम यह नहीं कहते कि यह प्रभाव इष्ट है या अनिष्ट, हम तो केवल प्रभाव के अस्तित्व की चेतना-मात्र देना

चाहते हैं। मराठी में वह रहस्यवाद का अलौकिक प्यार न जग सका, काव्य जड़-जीवन से आबद्ध भौतिक अधिक रहा। ब्रजभाषा और खड़ी बोली-जैसा कोई फर्क मराठी में न होने पर भी पुरानी और नई पद्य-रचना-पद्धति में अवश्य बड़ा भेद है। हिन्दी पर जिस प्रकार से बंगला का, वैसे ही मराठी पर अंग्रेजी कविता का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ा है। हिन्दी-कविता के इतिहास-ज्ञाता जानते होंगे कि महावीरप्रसाद द्विवेदी-काल की इतिवृत्तात्मक कविता द्विवेदीजी के संस्कृत और मराठी के अध्ययन का सीधा परिणाम था। मराठी में यथासम्भव तत्सम शब्द-प्रयोग की रुचि-रीति रही है, उसकी भाषा और उसके काव्य-विषय प्रादेशिक रंग लिये रहे हैं। जो हो, इन सबका विवेचन एक साथ और साधारण रूप से न करके, गई पीढ़ी की मराठी-कविता के पाँच सर्वमान्य कवि चुनकर उन पर विवेचना करना उचित होगा।

वे ये कवि हैं—

(१) तांबे, (२) चन्द्रशेखर, (३) बी, (४) माधव ज्यूलियन् और (५) यशवन्त।

भास्कर रामचन्द्र तांबे ग्वालियर के निवासी थे। उनकी साठ वर्ष की जन्म-तिथि समारोह के साथ मराठी-साहित्य-संसार में मनाई गई। कवि के साथ ही वे एक उत्कृष्ट संगीत-ज्ञाता भी थे। उनकी कविता में उनके जीवन के छाया-प्रकाश के अस्फुट उत्कट रेखा-चित्र हैं। उन्होंने प्राय. गीत ही लिखे। बचपन में ईश-स्तुति के, तरुणाई में मधुर प्रणय के, प्रौढ़ावस्था में रहस्यवादी भावुकता के साथ आर्त्त-जीवन की चील के। अपने 'स्व' के बिन्दु में सम्पूर्ण विश्व की दर्पण-मुकुर के आत्म-दर्शन की क्षमता जिन थोड़े से उंगली पर गिने जाने वाले व्यक्तियों में होती है, उनमें से एक भास्कर-राव थे। वे महाराष्ट्र के लिए उतने ही प्रिय हैं, जितने गुजराती वालों को नान्हाराम दलपतराम या कि बंगला को रवि ठाकुर। 'तांबे की कविता' का दूसरा भाग मराठी-साहित्य का एक अमर अंग है। भाव-कोमल, गीत मधुर, सरल-सुन्दर ऐसी उनकी गीत-निर्झरिणी इतनी मन्द-मन्थर, गम्भीर-

ही हुआ है, वरन् वह ग्रे के 'ओड आन दी प्रोग्रेस आफ पोएसी'-जैसी ही सक्षेप में काव्य-परिपाटी के इतिहास की रेखा-सी खींचने के कारण भी बहुमूल्य है। उसमें के दो छन्द .

प्रसाद घडता तुझा, सहज नाभिमूळांतुनी।
अनन्य लहरी उठे, तनुस टाकिते व्यापुनी॥
तिच्या प्रसरणासवें सकल देह हेलावतो।
क्षणैक चपलौघ कीं जणु शिरातुनी वहतो॥
मुखामधुनि एकदा गदगदा तदा ये ध्वनी।
स्वय उचमलोनि ये हृदय, नीर ये लोचनीं॥
न काव्य-विषया विणा इतर भानही राहते।
रसात्मक पदावली मग मनोहरा वाहते॥

अर्थात् 'तुम्हारा प्रसाद होते ही, सहज, नाभि-मूल में से अनन्य लहरियाँ उठती हैं। वे सारे तन को व्याप्त कर डालती हैं। उन लहरियों के प्रसरण के साथ ही सारा देह जैसे हिलोरें लेने लगता है और माथे में क्षण-भर जैसे चपला चमक जाती है। तब मुँह में से गद्गद् होकर शब्द बाहर निकल पडते हैं। आप-से-आप हृदय उमड आता है। आँखें भर आती हैं। तब कविता के बिना दूसरी किसी बात का भान नहीं रहता और तब मनोहर रसात्मक पदावली बहने लगती है।

आपकी तुलना हिन्दी में जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के साथ ठीक-ठीक हो सकती है। रत्नाकर की कविता की धाक मानने वाले लोग अभी बहुत हैं। उसी प्रकार चन्द्रशेखर को भी लोग बहुत मानते हैं। साहित्य-सम्मेलन के कविता-विभाग के वे अध्यक्ष बन चुके हैं। मुन्शी अजमेरी-जैसे वे राज कवि होने के कारण थोडी-बहुत कविताई 'आर्डर पर सप्लाई' करनी पडी, फिर भी उन्होंने कविता-रति में यह भी कहा है, कि "मै गुलाम बना तथा बन्धन मे फँसा तो भी तुम्हारे ही खातिर।"

बी (Bee) तखल्लुस से मराठी में लिखने वाले कवि एक सच्ची प्रतिभा थे। आजीवन उन्होंने शायद केवल तीस या चालीस से ऊपर कवि-

ताएँ नहीं लिखीं। पर कीर्ति से वे ऐसे बचते रहे और लोकादर से इस कदर घबराते रहे कि गडकरी-केशवसुत के समय के ये महानुभाव ऐसे छिपे-छिपे-से रहे कि आखिर १९३४ में उनकी कविताओं का एक संग्रह बड़ी कठिनाई से बनकर छप पाया। अत्रे द्वारा संपादित संग्रह का नाम है 'फुलाची ओंजल' (फूलों की अंजलि)। जब उस संग्रह के लिए आपका चित्र माँगा गया, तब खानदेश के इस एकान्तवासी, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से पुरानी कविता से नवयुग के निर्माण-कर्ता कलाकार ने कविता की दो पंक्तियाँ लिखकर भेज दीं :

"का आग्रह ? रसिका ! नाव सांग मज म्हणुनी ?
नावात मोहिनी भासो सामान्यांसी।

ये पंक्तियाँ भी ने तीस बरस पहले, जब साहित्य-संसार उनके 'वेडगाणे' (पगले का गीत) पर सचमुच पगला हो उठा था और उनका असली नाम क्या है, इसका पता लगाने के लिए कुछ पत्र छपे थे, उनके उत्तर में लिखी थीं। उनका अर्थ है—"रे रसिक, नाम बता यह आग्रह क्यों कर ? नाम की मोहिनी तो साधारण लोगों को होती है"। 'बी' की कविता पर संग्रह के प्रस्तावना-लेखक ने एक वाक्य लिखा है कि "सरस रचना-कौशल्य, रमणीय कल्पना-विलास, असामान्य भाषा-प्रभुत्व, अभिनव विचार-दिग्दर्शन और तेजस्वी प्रतिभा-शक्ति, इन गुणों से बहुत थोड़े समय में और थोड़ा-सा लिखने पर भी साहित्य में उनको अचल स्थान मिल गया है।' उनकी कविताएँ दार्शनिक स्नेह स्पर्श लिये हुए, राष्ट्रीयता की माँग पर चिर-सजग मधुर कल्पनाओं की दीपमाला-सी, पर बरसों की उपेक्षा की तनिक भी परवाह न करने वाली उस अपने एकाकी निर्जन कोने में स्वय-सन्तुष्ट कलाकार के साफल्य का सर्वोत्तम शिखर पा लेती हैं। उनमें चुन जाने की विलक्षण क्षमता, उनमें संगीत का और स्त्री सुलभ गलेबाजी से बढ़कर वह मरलाई से भरा आकर्षण है, जो चित्र-कलाश्रित कविता में होता है। यदि कलाकार की कृतियों को उसके जीवन के पैमाने से नापना कुछ मानी रखता हो, तो मैं उन्हें मराठी का सर्व श्रेष्ठ कवि मानता हूँ। उनके काव्य-

दर्शन पर मराठी मासिक 'मनोहर' में मैंने सन् '४० में लेख भी लिखा था। बी जो कुछ लिखते हैं सयत, सचित और सवेदनामय। "कला केवल स्वयजीवी है न केवल स्वयजीवी पर वह विश्व की आदि-जननी है, वैसे ही कवि प्रकृति का दुलारा, दुनिया की नाराजी के बाद प्रकृति की शान्त गोद में मुँह छिपाये आशावादी स्वर से विश्व-जागृति के गीत गाने वाला होता है," यह उनकी कविता के सन्देश है। एक भाव-कोमल ऐतिहासिक प्रेम-कथा, 'कमला' आपने अपने कवि-जीवन की शुरूआत में लिखी थी, पर अब तो उनकी वाणी अतिशय प्रौढ उनकी अभिव्यक्ति अतिशय मुक्त हो गई है। मराठी-कविता के इतिहास में पुरानी परिपाटी में रहकर भी नवीन रीति से रचना करने का साहस इन्होंने ही दिया था। अंग्रेजी की कहावत का सहारा लेकर यों भी कहा जा सकता है कि पुरानी बोतलों में उन्होंने नया काव्य-मद भर दिया। उनकी रहस्यवादी कविताओं में सर्व-श्रेष्ठ 'चम्पा', 'पगली का गीत', 'क्षण-भर', 'बुलबुल' आदि हैं और राष्ट्रीय कविताओं में 'डंका', 'क्रान्तिकारी', 'भगवा झण्डा' आदि हैं। एक उद्धरण दिए बिना न रहा जा सकेगा :

ही दंगल जेव्हा होते
नाकळे चि केठुनि की ते
येतात बढवाले ते
जग हाले, स्वागत बोले
आम्ही त्या दिल्जानाचे
साथी-ना मेलेल्याचे
हे डके फडती त्याचे
ऐकोत कान असलेले

अर्थात्—यह द्वन्द्व जब होता है, तब न जाने कहाँ से क्रान्तिकारी आते हैं। जग हिलता है और स्वागत बोलता है। हम तो उन दिल-जानों के साथी हैं—मरे हुओं के नहीं। यह नौबत उन्हीं की बज रही है, जिन्हे कान हों, वे सुनें।

काल की सत्ता पर, क्रान्ति के यथार्थ अर्थ पर, स्वातन्त्र्य की सीमाओं पर भी ने बहुत-कुछ कहा है। चुपचाप एक कोने में पड़े-पड़े भी की कलम ने वह जादू किया, जिसने समाज के जीवन में एक नई चेतना का आन्दोलन पैदा कर दिया। हिन्दी में तुलना करते हुए 'एक भारतीय आत्मा' से ये बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं, यद्यपि दोनों के प्रेम-दर्शन में अन्तर है। साथ ही महादेवी का रहस्य-प्रेम भी भी में प्रस्फुट है।

माधव ज्यूलियन् और भी दिलचस्प व्यक्ति थे। बी० ए० तक आप संस्कृत के विद्यार्थी थे और एम० ए० में किन्हीं निजी कारणों से आपने फारसी ले ली और फारसी के उद्भट विद्वान् हो गए। तब राजाराम कालेज, कोल्हापुर में फारसी के प्रोफेसर थे। रसीले जीव थे, जीवन का प्रेम रमण्यास, उत्कटता के साथ गजलों में उतारते रहे। पर साथ ही प्रखर बुद्धि की देन प्रभु ने उन्हें दी, इससे उनके शृङ्गार गीत साहित्य की एक सुस्वस्थ सम्पदा बन गए। इनकी भावुकता उर्दू, फारसी के इश्क के मर्ज से प्रभावित उत्तान दार्शनिक और संस्कृत की ललित-अलंकृति और कल्पना-विलास से अनुरंजित हो मधुर हो गई। ओज और माधुर्य के इस प्रेम में काव्य का तीसरा गुण प्रसाद वे भूल गए। पर ऐसे सुन्दर पद्य-चित्र खींचने में वे कुशल थे कि यह सब छोटे-मोटे दोष उनके सामने ढँक जाते हैं। डॉक्टर माधव त्रिंबक पटवर्धन-जैसा कि उनका पूरा नाम है—मराठी में न केवल अपनी पद्धति के अकेले कवि के नाते निराले होकर प्रसिद्ध हैं, पर 'अ' में ही सब स्वर (जैसे अी, अे) लिखने वाले वं० सावरकर के साथ इस लिपि का अवलम्ब करने वाले गद्य के, विशेषतया छन्द-शास्त्र और काव्य-समालोचन के आचार्य, आलोचक माने जाते हैं। पूना में सात नवीन कवियों की एक छोटी-सी संस्था 'रवि-किरण मण्डल' का निर्माण इन्हीं के उद्योग का फल था और छोटे-मोटे आज तक वहाँ से, पच्चीस से अधिक कविता-ग्रन्थ छप चुके हैं। आपका दूसरा काव्य था एक कथात्मक समाज-सुधार पर व्यंग्य के रूप में 'सुधारक' खण्डकाव्य; जो विशेष लोकप्रिय हुआ। उसके पहले वे एक प्रेम-कथा, सम्पूर्णतया यथार्थवादी, 'विरह-

तरंग' के नाम से प्रकाशित करा चुके थे, जो उनके जीवन की मराठी-साहित्य को एक स्थायी-देन है। उसमें एक विद्यार्थी परजातीय विद्यार्थिनी के स्नेह-पाश में पड़कर विवाह न हो सकने के कारण जो बिछोह का दुःख झेलता है, वह बड़ी खूबी के साथ चित्रित किया गया था। उनका और सुन्दर काव्य-संग्रह तो १९३३ में निकला, नाम था 'गज्जलाजली' अर्थात् 'गजलों की अंजलि'। इस नाम ही में उनके पाण्डित्य-प्रधान संस्कृत, फारसी, अर्द्धमिश्रित व्यक्तित्व का निचोड़ आ गया था। इसमें कवि ने अरबी-फारसी के छन्द को मराठी में प्रचलित करने के उद्देश्य से एक सौ आठ गजल लिखीं। यौवन की उद्दाम भावनाओं के उच्छ्वास, निश्वास प्रति-ध्वनित हैं, उनमें कुछ बड़े मार्मिक और भावरम्य हैं। सुन्दर सृष्टि-चित्र, छवि-चित्र, रूपसियों के यथार्थवादी चित्र, चुनिंदा शब्दों में वे खींचकर रख देते हैं। गज्जलांजली पर 'प्रतिभा' के सम्पादक तथा जनता में 'महात्मा' चित्रपट के कथा-लेखक के नाते अधिक परिचित मराठी के निष्पक्ष समालोचक के० नारायण काले ने लिखा था कि यद्यपि कहीं-कहीं जान-बूझकर उनकी भावोत्कटता रस-मारक बन जाती है, तो भी शब्दों के साथ अर्थ ध्वनित करने की उनकी अद्वितीय शक्ति के सामने उर्दू, फारसी जैसा एक-ही-एक प्रेम-विषय का बाहुल्य इतना नहीं अखरता। 'स्वप्नरंजन' उनकी एक काव्य-पुस्तिका है, इसमें उनकी अन्य स्फुट रचनाएँ संग्रहीत हैं, उसमें सुन्दर शिशु-गीत हैं, दार्शनिक कविताएँ हैं, प्रौढ रचनाएँ हैं, बाल्य-काल की रचनाएँ हैं, यौवन के अधूरे उद्गार हैं। वे भी मराठी साहित्य-सम्मेलन की काव्य-परिषद् के प्रमुख रह चुके हैं और उनके व्याख्यान (वे एक अच्छे वक्ता भी थे) सदा बड़े विद्वत्तापूर्ण और गम्भीर रहा करते हैं। यद्यपि नींव बी-जैसे लोगों ने डाली, तो भी कविता के नवयुग के स्वरूप-निर्माण में प्रमुख शिल्पी माधव ज्यूलियन् हैं। उनकी उपमा हिन्दी में एक मात्र सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' से दी जा सकती है। मस्ती में, पाण्डित्य में, शृङ्गार लिखने में वे निरालाजी-जैसे ही निराले, नामी और बदनाम, जो कह लो, रहे। माधव ज्यूलियन् ने एक 'मैं और

तुम' लिखा है, वह निराला के 'मैं और तुम' से कुछ कम नहीं। उनकी कविता के उद्धरण इतने अधिक हो सकते हैं कि कौन-कौन दिये जायें?

यशवन्त दिनकर पेंढारकर 'रवि-किरण-मण्डल' के दूसरे प्रथितयश सदस्य, यरवदा की बच्चों की जेल (रिफॉर्मेटरी) के मुख्याध्यापक थे। बाद मॅण्डोदा के राज-कवि बने। इस विद्रोही कवि ने एक खण्ड काव्य 'जय-मंगला' प्रकाशित किया था। यह एक ऐसी पद्य-कथा थी, जो केवल स्फुट मुक्तक नाट्यात्मक गीतों में व्यक्त हो गई थी, पर रीति के चमत्कार के अलावा उसमें जो वस्तु थी, वह 'राजतरंगिणी के' कवि बिल्हण का काश्मीर के राजा की लड़की के साथ काव्य शास्त्राध्यापक के नाते जो प्रेम प्रस्थापित हुआ था, उस पर आधारित एक रोमैण्टिक चीज थी। वैसे उनकी अनेक काव्य पुस्तकों में मुझे 'जय-मंगला' बड़ी सुन्दर जान पड़ती है। पर इससे कलेवर में बड़ा एक खण्ड-काव्य है 'बन्दी-शाला', जिसमें उनके यरवदा-सुधार स्कूल के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की छाया के साथ समाज की एक मर्मस्पर्शी समस्या बाल-बन्दियों पर नवीन प्रकाश डाला गया है। उसकी शुरुआत ही में शारदा की स्तुति में कवि कहता है :

> "दाग लगा हो तो भी मेरा फूल तुझे भा जाये,
> उदार-हृदये, स्वीकृत मेरी भेंट हो, न मुरझाये।"

और उसी में जगह-जगह पर यही पंक्ति अनेक बार दुहराई जाती है कि 'जीवन यानी एक और है विस्तृत बन्दीशाला।' वह 'जयमंगला' के पहले की कृति थी। इन दो खण्ड-काव्यों को छोड़कर 'भाव लहरी', 'यशवन्ती', 'यशोधन', यशोगन्ध' आदि इनकी स्फुट-कविताओं के ग्रन्थों के क्रम से नाम हैं। 'भाव-लहरी' उसमें सबसे कोमल है, यशोधन सबसे अधिक लोकप्रिय। यशवन्त ने जैसा कि उनका कविता-क्षेत्र में नाम है कुछ ग्राम-गीत भी लिखे हैं और एक-दो तो रिकार्ड में भी उन्होंने गाये हैं। इस प्रकार से हिन्दी-कवि कहाँ तक पहुँच सकेंगे, यह प्रश्न मैंने सन् '३८ में 'हंस' में उठाया था। सरल प्रेम-गीतों के, प्रखर राष्ट्रीय गीतों के कवि यशवन्त का सबसे बड़ा गुण सारल्य है, प्रसाद उनके साथ चलता

है। अंग्रेजी नाटकों के क्षेत्र मे, जो फर्क शॉ और गाल्सवर्दी में हम देखते हैं, यानी वे ही प्रतिमा की चिनगारियाँ पूरे स्वाभाविक वेग से शॉ में चमकती हैं, पर गाल्सवर्दी मे जग-जीवन से मानवतावादी मार्दव पाकर उनकी तेजी कम हो जाती है, वैसे ही समाज-सुधार और प्रेम की भावना माधव ज्यूलियन् में जिस कदर फव्वारे-सी हृदय में निकलती है, वही हम यशवन्त में भीनी फुहियो में परिणत पाते हैं। यशवन्त की विशेषता उनकी सरल भाषा पर अधिकार में निहित है। यशवन्त कभी पाण्डित्य के बोझ को कविता की परी के पखों पर नहीं लादना चाहते।

मराठी प्रेम-कविता की यह परम्परा आगे 'अनिल' के 'प्रेम आणि मरण' में, कुसुमाग्रज के 'पृथ्वी के प्रेम-गीत' में और बोरकर के 'खुसल्या लाख कल्या' में मिलती है। इसी परम्परा मे और भी आधुनिकों में सजीवनी मराठे, इन्दिरा सन्त, पद्मा आदि कवयित्रियों ने, और वा० रा० कात, वसन्त बापट, मगेश पाडगावकर, विंदा करदीकर आदि कवियों ने मानवी सवेदनाओं की और सूक्ष्म छटाओ और बारीकियों को अंकित किया है। अब वैयक्तिक प्रेम और बृहत्तर समाज-जीवन के प्रश्न जैसे एकरस हो उठे है। शृङ्गार के लिए शृङ्गार कोई मानी नहीं रखता। यन्त्र-युग में आकर उसके रसराजत्व में शका पैदा हो गई है।

आधुनिक साहित्य : विकास-रेखा

१८१८ ईस्वी में पानीपत में पेशवा-राज्य का पूर्ण पराभव हुआ और महाराष्ट्र में ब्रिटिश-राज्य का सूत्रपात भी। ब्रिटिशों का पूर्ण परिचय होने से पहले प्रारम्भिक सभ्रम, तनातनी, विरोध, सुधारवादियों की सम्पूर्ण आंग्लानुकरण की वृत्ति, अपरिपक्व राष्ट्रीय विरोध आदि कई अवस्थाओं में से हमारे और ब्रिटिशों के सम्बन्ध गुज़रे। न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से वरन् इस सारी दुःखान्त कथा की पूर्वपीठिका समझने की दृष्टि से न० चिं० केलकर की 'मराठे आणि इंग्रज' पुस्तक बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आरम्भ में मराठी-भाषा-भाषी अंग्रेज़ी की ओर झुकने के बजाय एकानेक कारणों से संस्कृत की ओर झुके थे। १८१० ईस्वी में सीरामपुर में डॉ० विलियम कैरे ने 'मराठी-अंग्रेज़ी-कोश' छपाया। उसी समय गणपत कृष्ण जी ने बम्बई में प्रथम मुद्रणालय स्थापित किया। १८२० में बम्बई-प्रान्त अंग्रेज़ों के हाथों में आया। माउंट-स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन बम्बई के गवर्नर बनाए गए। आपने शिक्षा का प्रसार किया। तन्निमित्त ग्रन्थानुवाद कराए। मोल्सवर्थ, कैंडी, जर्विन आदि अंग्रेज़ और जगन्नाथ, शंकरशेट, सदाशिव काशिनाथ छत्रे, बालशास्त्री जाम्भेकर आदि विद्वान् उस ग्रन्थोत्पादन-संस्था में कार्य करते थे। व्याकरण, बीजगणित, भूमिति, पदार्थ-विज्ञान आदि विषयों पर विपुल ग्रन्थ-रचना की गई। मराठी-गद्य का और वैज्ञानिक साहित्य का इस प्रकार

से आरम्भ हुआ। १८५६ में बम्बई-विश्वविद्यालय की स्थापना तक यह अरुणोदय (रिनेसाँ) चलता रहा।

बम्बई-विश्वविद्यालय की स्थापना से 'निबन्धमाला' नामक मासिक के उदय तक (१८५७ से १८७४ ईस्वी) का काल प्राचीन और नवीन के सघर्ष का काल है। एक ओर सस्कृत-ज्ञान-परम्परा के शास्त्री-पण्डितजन, दूसरी ओर अग्रेजी विद्या और वाङ्मय के सम्पर्क में आए हुए नवीन विद्वान्। १८५६ तक का साहित्य अधिकाश शालेय (स्कूलोपयोगी) था, परन्तु अब साहित्यिकों के मनों में यह भावना काम करने लगी कि साहित्य का प्रचारात्मक और कलात्मक पक्ष भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। फलत. जहाँ परशुरामपत तात्या गोडबोले ने सस्कृत नाटकों के अनुवाद किए थे, उसी परम्परा को कृष्णशास्त्री राजवाडे ने आगे चलाया। अभी हाल में कहीं हिन्दी में कालिदास के समग्र नाटकों के और 'काव्य प्रकाश'-जैसे ग्रन्थों के सस्कृत से हिन्दी-अनुवाद हिन्दी में छपे हैं। मराठी मे यह कार्य पचास वर्ष पूर्व हो चुका था। गणेश शास्त्री लेले ने भी बहुत-से अनुवाद सस्कृत और अग्रेजी से किए। इस काल-खण्ड के सबसे प्रसिद्ध लेखक हैं पिता पुत्र कृष्णशास्त्री और विष्णुशास्त्री चिपलूणकर। दोनों के आविर्भाव-काल में पच्चीस वर्षों का अन्तर था, परन्तु दोनों का आदर्श एक था। कृष्णशास्त्री ने मिशनरियों के विरोध में 'विचार-लहरी' पत्र १८५२ में शुरू किया। डॉ० जान्सन के 'रासेलस' का अनुवाद और 'अनेकविद्यामूलतत्त्वसग्रह' नामक स्फुट लेखों का ग्रन्थ १८६१ में प्रकाशित किया। 'मेघदूत' और जगन्नाथ पण्डित के 'करुणविलास' के पद्यानुवाद, और 'सुकरात की जीवनी' आदि अन्य कई ग्रन्थ लिखे। उनका अधूरा कार्य दुगुने जोश से उनके सुपुत्र विष्णुशास्त्री ने चलाया। न केवल उन्होंने पिता के अधूरे लिखे हुए 'अरेबियन नाइट्स' (सहस्र रजनी-चरित्र, अरबोपन्यास) का अनुवाद पूरा किया, अपितु अपनी 'निबन्धमाला' द्वारा मिशनरियों पर अपना शब्द-शस्त्राघात और भी प्रखर रूप से व्यक्त किया। 'आमच्या देशाची स्थिति' नामक निबन्ध सरकार ने जब्त कर लिया था और काग्रेस-शासन-काल मे उस पर के प्रतिबन्ध उठे।

आप ही ने प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य के प्रकाशनार्थ 'काव्येतिहास-संग्रह' नामक मासिक, 'निबन्धमाला' नामक पत्रिका, 'चित्रशाला' और 'किताबखाना' नामक प्रकाशन-संस्थाएँ और तिलक, आगरकर के सहकार्य से 'केसरी' और 'मराठा' नामक मराठी-अंग्रेजी-पत्रों का सूत्रपात किया। 'निबन्धमाला' के कुल ८४ अंक उपलब्ध हैं, जो कि पूरे विष्णुशास्त्री ने लिखे हैं। उनके अन्य साहित्य का सुन्दर संकलन और सम्पादन नागपुर के इतिहासज्ञ और साहित्य-शिक्षक श्री बनहट्टी ने 'विष्णुपदी' नामक ग्रन्थ में किया है। विष्णुशास्त्री की भाषा-शैली प्रौढ़, रसमय और ओजपूर्ण है। प्रतिपक्षी का का विरोध करते समय व्यंग-परिहास आदि अस्त्रों का उन्होंने प्रचुरता से उपयोग किया है। यह प्रभावशाली लेखक केवल ३२ वर्ष जीवित रहा, परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान ही वह युग-निर्माता लेखक माना जाता है।

अंग्रेजों के सम्पर्क में वैज्ञानिक शोध के विकास-युग में मुद्रण-कला की प्रगति के साथ साहित्य के प्रचारात्मक अंग की परिपुष्टि के काल में मराठी-साहित्य का प्रवाह अब वेग से आगे बढ़ा। गई शताब्दी में साहित्य का ऐसा कोई अंग विशेष नहीं है, जिसमें मराठी ने पर्याप्त कार्य न किया हो। अब आगे के काल-खण्ड में नामों से न चलकर प्रवृत्तियों के विचार से चलना उपयुक्त होगा, क्योंकि नाम तो इतने अधिक हैं कि सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं हो सकता। अतः केवल प्रमुख नामों का ही उल्लेख करेंगे। विष्णुशास्त्री चिपलूणकर की युयुत्सु गद्य-शैली को निभाकर आगे पत्रकारिता की परम्परा चलाने वालों में प्रमुख हैं—

पत्र	पत्रकार
'सुधारक'	आगरकर
'केसरी'	बाल गंगाधर तिलक
'काल'	शि० म० परांजपे
'चाबुक'	अच्युत बलवन्त कोल्हटकर

इन पुराने पत्रकारों के पश्चात् बाद में प्रमुख थे और है—'नवा काल' के खाडिलकर, 'ज्ञानप्रकाश' के लिमये, 'चित्रा' के डॉ० ग० य० चिटणीस, 'महाराष्ट्र' के माडखोलकर, 'लोकमान्य' के गाडगिल आदि।

आगरकर की मान्यता थी कि राजनीतिक आन्दोलन को गौण स्थान देकर समाज-सुधार पहले से हो। तिलक बिलकुल इससे उल्टी बात कहते थे। परिणामत. दोनो मे बहुत काल तक विवाद रहा। आगरकर दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर थे और फर्ग्युसन कालिज के सस्थापक। आपका लेखन अधिकाशत. प्रतिपक्षी पर वार करने के हेतु से हुआ, परन्तु हिन्दू-समाज की कुरीतियो को दूर करने मे आपके लेखो का बहुत बडा हाथ रहा है। तिलक 'गीता-रहस्य', 'ओरायन', 'आर्क्टिक होम इन दी वेदाज' नामक ग्रन्थो के लेखक के नाते साहित्य मे जैसे प्रसिद्ध है, भारतीय राष्ट्रीयता सग्राम के एक सेनानी के नाते राजनीतिक क्षेत्र मे भी अविस्मरणीय हैं। दोनो ने जो परम्परा पत्र-साहित्य मे चलाई उसके अनुयायी आज भी साहित्य मे मिल जायँगे और उसमें यह युग तो समाचार-पत्र का साहित्य-युग ही माना जाता है।

गम्भीर गद्य के अन्य क्षेत्रो मे, (यथा इतिहास-सशोधनात्मक, जीवनी, कोप-रचनात्मक, समालोचनात्मक, वैज्ञानिक, राजनीतिक आदि) मराठी ने तिलकोत्तर-काल मे पर्याप्त प्रगति की है।' यदि जयचन्द्र विद्यालकार और ओझा जी को हिन्दी-साहित्य नहीं भूलेगा तो गो० स० सरदेसाई, पारस-नीस, खरे, राजवाडे आदि इतिहास-सशोधको का कार्य भी मराठी मे अद्वितीय है। जीवनी-साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे समृद्ध है। केलकर द्वारा लिखित तिलक की जीवनी, धर्मानन्द कौशाम्बी का 'निवेदन', कर्वे की 'आत्म-कथा', लक्ष्मीबाई तिलक की 'स्मृति-चित्रें', दा०न० शिखरे की 'गान्धी जी की जीवनी' और शि० ल० करदीकर का 'सावरकर-चरित्र' इस विभाग के ऐसे ग्रन्थ है जो किसी भी साहित्य मे गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगे।

साहित्य-समालोचना-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ निम्न कहे जाते है—

ग्रंथ	लेखक
१. प्रतिभा-साधन	प्रो० ना० सी० फडके
२. छन्दो-रचना	डॉ० मा० त्रि० पटवर्धन
३. हास्य-विनोद-मीमांसा	न० चिं० केलकर
४. अभिनव काव्य प्रकाश	रा० श्री० जोग
५. सौन्दर्य-शोध व आनन्दबोध	रा० श्री० जोग
६. काव्य-चर्चा	अनेक लेखक
७. वाग्मयीन महात्मता	बा० सी० मर्ढेकर
८. कलेची क्षितिजें	प्रभाकर पाध्ये
९. रस विमर्श	डॉ० के० ना० वाटवे

१०. चरित्र, आत्मचरित, टीका—प्रो० जोशी और प्रभाकर माचवे

इस सूची के बाद, जो दस वर्ष पुरानी है, श्री० के० क्षीरसागर, वा० ल० कुलकर्णी, दि० के० बेडेकर, ग० त्र्य० देशपांडे, कुसुमावती देशपांडे आदि मान्य समालोचकों के बहुत अच्छे सिद्धांत-चर्चा वाले ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं।

साहित्य के इतिहास-सम्बन्धी कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, फिर भी कोई एक पुस्तक ऐसी नहीं, जिसमें मराठी-साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास सचेत में मिल जाय। वैसे 'मराठी वाग्मयाचा इतिहास (३ भाग) ल० रा० पांगारकर, 'अर्वाचीन मराठी'—कुलकर्णी, पारसनीस, 'महाराष्ट्र सारस्वत' वि० ल० भावे, 'अर्वाचीन मराठी वाग्मय सेवक' ग० दे० खानोलकर, 'मराठी साहित्य समालोचन' वि० ह० मरवटे आदि ग्रन्थ बहुमूल्य हैं और इन्हीं की सहायता से यह अध्याय लिखा गया है। इधर डॉ० दांडेकर और प्रो० अ० ना० देशपांडे ने दो इतिहास छापे हैं।

इनके अतिरिक्त मराठी-साहित्य में गम्भीर गद्य के परिपुष्ट अंग हैं राजनीति, समाज-शास्त्र मनोविज्ञान, शिक्षा-शास्त्र तथा इतिहास संशोधन-सम्बन्धी ग्रन्थ। इन सबका परिचय इस छोटे-से अध्याय में सम्भव नहीं। कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं—'आधुनिक भारत'—जावडेकर 'लढाऊ राज-

इन पुराने पत्रकारो के पश्चात् बाद मे प्रमुख थे और है—'नवा काल' के खाडिलकर, 'ज्ञानप्रकाश' के लिमये, 'चित्रा' के डॉ० ग० य० चिटणीस, 'महाराष्ट्र' के माडखोलकर, 'लोकमान्य' के गाडगिल आदि।

आगरकर की मान्यता थी कि राजनीतिक आन्दोलन को गौण स्थान देकर समाज-सुधार पहले से हो। तिलक बिलकुल इससे उल्टी बात कहते थे। परिणामतः दोनो मे बहुत काल तक विवाद रहा। आगरकर दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर थे और फर्गुसन कालिज के सस्थापक। आपका लेखन अधिकाशत. प्रतिपक्षी पर वार करने के हेतु से हुआ, परन्तु हिन्दू-समाज की कुरीतियो को दूर करने मे आपके लेखो का बहुत बडा हाथ रहा है। तिलक 'गीता-रहस्य', 'ओरायन', 'आर्क्टिक होम इन दी वेदाज़' नामक ग्रन्थो के लेखक के नाते साहित्य मे जैसे प्रसिद्ध है, भारतीय राष्ट्रीयता सग्राम के एक सेनानी के नाते राजनीतिक क्षेत्र मे भी अविस्मरणीय है। दोनो ने जो परम्परा पत्र-साहित्य मे चलाई उसके अनुयायी आज भी साहित्य मे मिल जायँगे और उसमे यह युग तो समाचार-पत्र का साहित्य-युग ही माना जाता है।

गम्भीर गद्य के अन्य क्षेत्रो मे, (यथा इतिहास-सशोधनात्मक, जीवनी, कोष-रचनात्मक, समालोचनात्मक, वैज्ञानिक, राजनीतिक आदि) मराठी ने तिलकोत्तर-काल मे पर्याप्त प्रगति की है।' यदि जयचन्द्र विद्यालकार और ओझा जी को हिन्दी-साहित्य नहीं भूलेगा तो गो० स० सरदेसाई, पारसनीस, खरे, राजवाडे आदि इतिहास सशोधको का कार्य भी मराठी मे अद्वितीय है। जीवनी-साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे समृद्ध है। केलकर द्वारा लिखित तिलक की जीवनी, धर्मानन्द कौशाम्बी का 'निवेदन', कर्वे की 'आत्म-कथा', लक्ष्मीबाई तिलक की 'स्मृति-चित्रे', दा०न० शिखरे की 'गान्धी जी की जीवनी' और शि० ल० करदीकर का 'सावरकर-चरित्र' इस विभाग के ऐसे ग्रन्थ हैं जो किसी भी साहित्य मे गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेंगे।

साहित्य-समालोचना-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ निम्न कहे जाते है—

ग्रंथ	लेखक
१. प्रतिभा-साधन	प्रो० ना० सी० फड़के
२. छन्दो-रचना	डॉ० मा० त्रि० पटवर्धन
३. हास्य-विनोद-मीमांसा	न० चिं० केलकर
४. अभिनव काव्य प्रकाश	रा० श्री० जोग
५. सौन्दर्य-शोध व आनन्दबोध	रा० श्री० जोग
६ काव्य-चर्चा	अनेक लेखक
७ वाग्मयीन महात्मता	बा० सी० मर्ढेकर
८ कलेची क्षितिजें	प्रभाकर पाध्ये
९ रस विमर्श	डॉ० के० ना० वाटवे

१० चरित्र, आत्मचरित, टीका—प्रो० जोशी और प्रभाकर माचवे

इस सूची के बाद, जो दस वर्ष पुरानी है, श्री० के० क्षीरसागर, वा० ल० कुलकर्णी, दि० के० वेडेकर, ग० त्र्यं० देशपांडे, कुसुमावती देशपांडे आदि मान्य समालोचकों के बहुत अच्छे सिद्धांत-चर्चा वाले ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं।

साहित्य के इतिहास-सम्बन्धी कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, फिर भी कोई एक पुस्तक ऐसी नहीं, जिसमें मराठी-साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास संक्षेप में मिल जाय। वैसे 'मराठी वाग्मयाचा इतिहास (३ भाग)' ल० रा० पांगारकर, 'अर्वाचीन मराठी'—कुलकर्णी, पारसनीस, 'महाराष्ट्र सारस्वत' वि० ल० भावे, 'अर्वाचीन मराठी वाग्मय सेवक' ग० दे० खानोलकर, 'मराठी साहित्य समालोचन' वि० ह० सरवटे आदि ग्रन्थ बहुमूल्य हैं और इन्हींकी सहायता से यह अध्याय लिखा गया है। इधर डॉ० दाडेकर और, प्रो० अ० ना० देशपांडे ने दो इतिहास छापे हैं।

इनके अतिरिक्त मराठी-साहित्य में गम्भीर गद्य के परिपुष्ट अंग हैं राजनीति, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान, शिक्षा-शास्त्र तथा इतिहास-संशोधन-सम्बन्धी ग्रन्थ। इन सबका परिचय इस छोटे-से अध्याय में सम्भव नहीं। कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं—'आधुनिक भारत'—जावडेकर, 'लढाऊ राज-

कारण'—करदीकर, 'पाकिस्तान'—प्रभाकर पाध्ये, 'भारतीय समाज शास्त्र'-डॉ० केलकर, 'ग्यानबाचे अर्थशास्त्र'—गाडगिल, 'अर्थशास्त्र की अनर्थ-शास्त्र'—आचार्य जावडेकर। मनोविज्ञान व शिक्षण-शास्त्र पर आठवले, भा० घो० कर्वे, वाडेकर, प्रो० फडके, कारखानीस आदि के ग्रन्थ बहुत उपयोगी हैं। इतिहास-सशोधन के क्षेत्र में प्रो० राजवाडे, पारसनीस, डॉ० भाडारकर, काशीनाथ पन्तलेले और गोविन्द सखाराम सरदेसाई ये नाम स्वयं-प्रकाशी हैं। मराठी के गाधीवादी लेखकों का परिचय एक स्वतन्त्र विषय होगा। फिर भी उनमें प्रमुख बिनोबा भावे, काका कालेलकर, आचार्य भागवत, साने गुरुजी, अण्णासाहेब सहस्रबुद्धे, शकरराव देव, कुंदर दिवाण, प्रेमा कटक आदि हैं। इनका अधिकाश महत्त्वपूर्ण साहित्य हिन्दी में आ चुका है।

साहित्य के ललित अग (काव्य, नाटक, उपन्यास, आख्यायिकादि) का विशेष रूप से विकास हुआ है। इनका विस्तार पूर्वक विवेचन भी अनुपयुक्त न होगा। अगले अध्यायों में मराठी के आधुनिक साहित्य-प्रवाहों तथा प्रमुख लेखको और उनकी रचनाओं का यथास्थान उल्लेख किया जायगा।

: ८ :

मराठी-गद्य का विकास

वैसे तो कुछ प्राचीन कागज-पत्रों में, एकनाथके भारूडों में और कई ऐतिहासिक बखरों और पत्रों में गद्य का पुराना रूप मिलता है, परन्तु उसे आधुनिक अर्थ में साहित्यिक गद्य नहीं कहा जा सकता। सन् १७६१ में पानीपत के युद्ध के बाद और सन् १८१८ में ब्रिटिशो से मराठों की संधि के बाद आधुनिक काल शुरू होता है, जिसमें मिशनरियों का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। इतिहासाचार्य राजवाडे संवत् १६८५, १७३५ और १७८५ के तीन पत्रों की तुलना करके इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मराठी-गद्य में १६८५ में ८० प्रतिशत, १७३५ में ३१ प्रतिशत और १७८५ में ६ प्रतिशत उर्दू शब्दों का प्रयोग मिलता है। ईसाई-मिशनरियों ने मराठी-गद्य को उर्दूदानी से बचाया और 'खिस्त पुराण' आदि ग्रन्थों में मराठी को संस्कृत-मय बनाया। 'बखर' कहते हैं ऐतिहासिक लेखे-जोखे को। इन बखरों के रूप में कुछ अच्छे नमूने मध्ययुगीन मराठी-गद्य के मिल जाते हैं। सबसे पहली बखर स० १६२१ की 'तालीकोटच्या लढाईची' बखर है। दूसरी 'सभासद बखर' स० १७५१ की है, और तीसरी 'भाऊसाहेबाची बखर' है स० १८१८ की। इन बखरों में और शिवाजी महाराज के समय बने 'राज्यव्यवहार-कोश' शब्द-कोश में शासन-सम्बन्धी बहुत सी उपयोगी शब्दावली मिलती है। उसका उपयोग बाद में सयाजीराव गायकवाड ने बड़ौदा में पाँच भाषाओं के

(सस्कृत-हिन्दी-मराठी-गुजराती-अगरेजी) कोश में किया था।

स० १८६२ में डॉ० विलियम कॅरी के प्रयत्नों से श्रीरामपुर में 'मराठी भाषा का व्याकरण' और १८६७ में 'मराठी-अगरेजी-कोश' भी प्रकाशित हुआ। बम्बई के गवर्नर एलफिन्स्टन (स० १८७७—८४) ने मराठी की उन्नति के लिए 'नेटिव स्कूल बुक्स एड सोसायटी' स्थापित की। इसके द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कराए। दादोबा पाडुरग (स० १८६१—१६३६) ने सुप्रसिद्ध मराठी व्याकरण प्रकाशित कराया। यह व्याकरण कामताप्रसाद गुरु के 'हिन्दी व्याकरण' की भाँति आरम्भिक और अधिकारपूर्ण रचना है। मराठी-गद्य के आरम्भिक निर्माताओं में सर्वश्री बालशास्त्री जाँभेकर, हरिकेशव और परशुराम पन्त गोडबोले प्रमुख हैं। इन्हींके प्रयत्नों से समाचार-पत्रों की नींव पडी और निबन्ध, समालोचना, कथा, उपन्यास आदि साहित्य-प्रकार विकसित हुए।

मराठी में निबन्ध-साहित्य के विकास पर अगरेजी निबन्ध के विकास का बहुत असर पडा है। आरम्भिक प्रयत्न कृष्णशास्त्री चिपलूणकर और लोकहितवादी (रा० ब० गोपाल हरी देशमुख) ने किये। 'विविध ज्ञान विस्तार' और 'विचार लहरी' ने निबन्ध के विकास में बडा योग दिया। बाबा पदमनजी, विष्णुबुवा ब्रह्मचारी, ज्योतिकर फुले आदि ने इस दिशा में और आगे कदम बढाये। तिलक और आगरकर ने निबन्ध की गति को और समाजोन्मुख बनाया और उनके बाद के प्रधान गद्यकार हैं न० चिं० केलकर, शि० म० पराजपे, ना० सी० फडके आदि। अवधनारायण द्विवेदी ने मराठी की विभिन्न-निबन्ध-सरणियों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए एक लेख में लिखा है—

१ विनोदी निबन्ध—मराठी में हास्य-रस-प्रधान निबन्धों को विनोदी निबन्ध कहते हैं। इस प्रकार के निबन्धों के जनक 'श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर' माने जाते हैं। आगे चलकर सुप्रसिद्ध नाटककार 'श्री गडकरी' जी ने इनका बडा सफल अनुकरण किया। मराठी के अन्य विनोदी निबन्ध-लेखकों मे सर्व श्री प्र० के० अत्रे, कैप्टन लिमये, शकुन्तलाबाई पराजपे, कमतनूरकर,

चिं० वि० जोशी, शामराव ओक, वि० मा० टी० पटवर्धन, पु० ल० देशपांडे विशेष यशस्वी हैं।

२. ललित निबन्ध—इसे मराठी में 'गुजगोष्टि' और 'लघु निबन्ध' भी कहते हैं। निबन्ध-लेखन का यह नवीन प्रकार मराठी में पिछले २५-३० वर्षों से ही प्रचलित हुआ है। इसके प्रवर्तक प्राध्यापक ना० सी० फडके माने जाते हैं। ललित निबन्ध अंगरेजी के 'पर्सनल एसे' या 'लिटरेरी एसे' के ढंग पर लिखे जाते हैं। इस क्षेत्र में श्री फडके के अतिरिक्त श्री० वि० न० खांडेकर और श्री अनन्त काणेकर प्रतिनिधि माने जाते हैं। यद्यपि ललित निबन्ध में पांडित्य-प्रदर्शन के लिए अवकाश नहीं होता तथापि उससे लेखक के दीर्घकालीन अनुभव, सूक्ष्म निरीक्षण एवं बुद्धि-विलक्षणता आदि गुणों का भली भाँति परिचय मिल जाता है। ऐसे अन्य निबन्धकारों में सर्वश्री वि० ल० बर्वे, मा० का० देशपांडे, वि० पा० दांडेकर, श्री० स० भावे, वा० भा० पाठक, ग० भा० निरन्तर, ना० मा० सन्त, दि० ल० देवधर, र० गो० सरदेसाई, गो० रा० दोडके आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

३. व्यक्तिचित्रात्मक निबन्ध—अंगरेजी में 'कैरेक्टर एसे' निबन्ध-साहित्य की एक और अभिनव शैली है। इसे मराठी में 'व्यक्तिचित्रें' नाम दिया गया है। अंगरेजी के सुप्रसिद्ध लेखक ए० जी० गार्डनर ने इस प्रकार के बहुत-से निबन्ध लिखे हैं। उन्होंने अपनी पुस्तकों में—'द पिलर्स ऑफ द सोसाइटी', 'प्रोफेट्स, प्रीस्ट्स् एण्ड किंग्स'-समकालीन कितने व्यक्तियों के स्वभाव-चित्र कलात्मक ढंग से खींचे हैं। ऐसे निबन्धों का एक विशेष विधान होता है। परिचयात्मक लेख या चरित्र-चित्रण से ये निबन्ध भिन्न होते हैं। जिस व्यक्ति का स्वभाव-चित्रण करना होता है उस व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य, उसके जीवन की कार्य-प्रेरक शक्ति उसे किस दिशा की ओर ले जा रही है, उस व्यक्ति की बौद्धिक अथवा मानसिक विशिष्टता किस प्रकार की है, इन सब बातों को लेखक अपने शब्द-चित्रों द्वारा चित्रित करता है।

कुछ प्रमुख गद्यकार

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (१८५६-१९२०)—राजनीति में 'लोकमान्य' जितने लोकमान्य हैं, साहित्य में उनका कार्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है। रत्नागिरी में आपका जन्म हुआ, डेक्कन कॉलेज से १८७७ में आपने बी० ए० किया और १८७९ में वकालत की डिग्री हासिल की। इसी बीच में आप हिन्दू-धर्म-शास्त्र और दर्शन का गम्भीर अध्ययन करते रहे वकालत की परीक्षा के बाद आप वकालत शुरू न करके निबन्धमालाकार विष्णुशास्त्री चिपलूणकर की शाला में शिक्षक के नाते कार्य करते रहे। १८८० में यह शाला स्थापित हुई, उसमें आप पढाते रहे। अगले साल 'केसरी' और 'मराठा' पत्र पूना से प्रकाशित हुए। आगरकर 'केसरी' के और तिलक 'मराठा' के सम्पादक बनाये गए। १८८२ में चार महीने की सजा आपको हुई—एक सम्पादकीय लिखने के लिए। बाद में १८८४ में 'डेक्कन एज्यूकेशन सोसायटी' की स्थापना के बाद तिलक फर्ग्युसन कॉलेज में गणित और सस्कृत पाँच वर्ष तक पढाते रहे। 'मेघदूत' और 'नीतिशतक' वे बहुत अच्छा पढाते थे। तिलक ने बाद् में कॉलेज से त्याग-पत्र दिया और 'केसरी' तथा 'मराठा' पत्र अपने हाथों में ले लिये और उनके द्वारा अपनी राजनीतिक मतावली का सबल लेखनी द्वारा प्रचार किया। १८९५ में तिलक काउसिल के लिए चुने गए। १८९७ में तिलक पर सरकार ने मुकदमा दायर किया और उन्हें एक वर्ष की सजा हुई। १९०५ में बग-भग के आन्दोलन के बाद तिलक के उग्र, क्रान्तिकारी विद्रोही मत-प्रचार के कारण उन पर १९०८ में राज-द्रोह का आरोप लगाया गया और उनको छः वर्ष माडले जेल में बिताने पड़े। १९१४ मे वे छूटे और १९१६ में उन्होंने काग्रेस में प्रवेश किया। ६१ वर्ष की आयु में उन्हें एक लाख रुपयों की थैली दी गई, जो उन्होंने राष्ट्र-कार्य में लगा दी। मृत्यु से पहले तिलक ने 'काग्रेस डेमोक्रेटिक दल' की स्थापना भी की थी। इस प्रकार के व्यस्ततापूर्ण जीवन मे भी तिलक ने न केवल स माचार-पत्रों द्वारा, परन्तु अपने ग्रन्थों से भी साहित्य की अमूल्य सेवा की है। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'गीता-रहस्य'।

इसका अनुवाद प० माधवराव सप्रे ने हिन्दी में प्रकाशित किया। १६१०–११ में इस ग्रन्थ की योजना तिलक ने बनाई और १६१५ में उसे प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में तिलक ने 'भगवद्गीता' में वर्णित कर्मयोग के सिद्धान्त का नये सिरे से शोध किया। इसके लिए पूर्वापर दर्शन-पद्धतियों का मौलनिक अध्ययन भी उपस्थित किया। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त 'ओरायन' और 'आर्क्टिक होम इन दी वेदाज' ये दो अंग्रेजी ग्रन्थ भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। तिलक के 'केसरी' में लिखे सब लेख चार खण्डों में १६२२ से १६३० में प्रकाशित हुए। उसी प्रकार से चार खण्डों में तिलक के व्याख्यान भी प्रकाशित हुए हैं। तिलक की भाषा-शैली बहुत विद्वत्तापूर्ण, तर्कयुक्त, कठोर, प्रखर व्यंग के कशाघातों से युक्त और विचार-प्रक्षोभक थी। तिलक के अन्य मराठी ग्रन्थ ये हैं—

१. 'वेदकाल निर्णय' (१६०८)

२. 'आर्यलोकान्चे मूलस्थान' (आर्य लोगों का मूल स्थान) १६१०

३. 'मद्रास, सीलोन, ब्रह्मदेश येथील प्रवास' (इन तीनों स्थानों का प्रवास) १६००

४ 'तिलक-सूक्ति-सग्रह' (१६२६)

५. 'हिन्दूधर्माचे स्वरूपलक्षण' (हिन्दू धर्म का स्वरूप लक्षण) १६२८

'लोकहितवादी' (१८२३–१८६२)— सरकारी नौकर होने के कारण गोपाल हरि देशमुख नामक प्रसिद्ध समाज-सुधारक लेखक ने 'लोकहित वादी' उपनाम से ग्रन्थ-रचना की। आपका जन्म पूना में सरदार घराने में हुआ। 'सिधये' आपका मूल कुटुम्ब-नाम था। २१ वर्ष की उम्र में आपने इतिहास और अंग्रेजी विषय लेकर अन्तिम अंग्रेजी परीक्षा पास की। १८५२ में वे वाई में मुनसिफ हुए। बाद में बम्बई-हाईकोर्ट की ओर से 'हिन्दूधर्मशास्त्र का सार' (डाइजेस्ट) जो बन रहा था उस काम पर आपकी नियुक्ति हुई। १८६२ में आप अहमदाबाद में असिस्टेण्ट जज बनाये गए। बाद में नासिक और अहमदाबाद में आप स्माल कॉज कोर्ट के जज रहे। १८७६ में आपको रायबहादुर बनाया गया और १८७८ में वे सेवा-

निवृत्त हुए। पेन्शन पाने के बाद उन्होने अपना लिखना और भी जोरों से शुरू किया। 'आर्यसमाज' से आपका बडा निकट का सम्बन्ध था। दयानन्द के बाद के ट्रस्टियों में वे एक थे। 'लोकहितवादी' मासिक पत्रिका भी आपने चलाई।

आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं—(१) 'जातिभेद', १८७७, (२) 'गीता-तत्त्व', १८७८, (३) 'ऐतिहासिक गोष्ठी व उपयुक्त माहिती', भाग १-३ (ऐतिहासिक कहानियाँ और उपयोगी जानकारी, भाग १ से ३); (४) 'आगमप्रकाश', १८८४, (५) 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' १८८०, (६) 'ग्राम-रचना, त्यातील व्यवसाय व त्याची हल्लींची स्थिति' (ग्राम-रचना, उसमे के व्यवसाय और उनकी आज की हालत), १८८३, (७) 'राजस्थान चा (का) इतिहास', (१०) 'सुराष्ट्र देश चा (का) सक्षिप्त इतिहास', 'गुजराथ देशा चा (का) इतिहास', 'लकेचा (लका का) इतिहास', (११) 'हिन्दुस्थान चा (हिन्दुस्तान का) इतिहास-पूर्वार्द्ध', (१२) 'स्वाध्याय', (१३) 'सुभाषित अथवा सुबोध वचने', (१४) 'पृथ्वीराज चौहान इतिहास', (१५) 'शत पत्रें', (१६) 'निबन्ध संग्रह', (१७) 'हिन्दुस्थानास दारिद्रय येण्याची कारणें आणि त्याचा परिहार व व्यापार विषयक विचार', (हिन्दुस्तान की दरिद्रता के कारण और उसके दूर करने के व्यापार विषयक विचार) (१८) 'भिक्षुक', (१९) 'कलियुग', (२०) 'निवडक पत्रें', नवयुग, अगस्त १९२२, (२१) 'पानिपत चीं (की) लडाई'।

'लोकहितवादी' ने महाराष्ट्र में बहुजनसमाज की दृष्टि से प्राचीन को छाना और उसकी बुद्धिग्राह्य-मीमासा-प्रस्तुत की। उनका व्यंगास्त्र बडा तीव्र था। उन्होंने लिखा है—"धर्म के नाम से सब चिल्लपों मचाते हैं, परन्तु 'धर्म क्या है?' यह पूछने पर वे रीति-रिवाजों को ही धर्म मानते हैं यह पता लगेगा।" "काशी-क्षेत्र के ब्राह्मणों को हिस्सा मिलते ही वे अमृतराव की लूट के पैसे को भी पवित्र मानने लगे।" 'एक बार समाज में जब पागलपन चढ जाता है तब वह विचारवानों का भी कुछ नहीं चलने देते। उलटे उस पागलपन में विचारवान लोग भी शामिल हो जाते हैं,

और उसे बढ़ावा देते हैं।" विदेश-गमन के विषय में उन्होंने लिखा है— "म्लेच्छों के देश में जाने पर प्रतिबन्ध था, पर अब तो तुम्हारा देश ही म्लेच्छों का हो गया। अब प्रतिबन्ध कैसा ?" 'लोकहितवादी' के स्पष्ट मतों के कारण उनकी जीवित अवस्था में उनकी बड़ी तीव्र आलोचना हुई।

'धनुर्धारी' (१८६२—१९०७)—रामचन्द्र विनायक टिकेकर नाम के सज्जन ने इस उपनाम से करीब चालीस ग्रन्थ मराठी साहित्य को दिये। इतिहास, अर्थशास्त्र, व्यापार, बाल वाङ्मय, धर्मनीति, जीवनी, उपन्यास, निबन्ध आदि अनेक विषयों पर 'धनुर्धारी' ने लिखा है। आपकी आरम्भिक शिक्षा बहुत कम हुई थी। परन्तु धारवाड में अपने भाषा और इतिहास का बहुत गहरा अध्ययन किया। आजीवन दरिद्रता से लड़ते हुए 'धनुर्धारी' ने कई तरह के व्यवसाय किये, परन्तु लेखन के प्रति अपना प्रेम अखण्ड रखा। जीवन के अन्तिम दिनों में वे साधु बन गए थे। और 'किरात' नाम के उपनाम से जैसे उन्होंने लिखा, उसी प्रकार से 'राघवानन्द' नाम से भी उन्होंने लिखा है। आपने अपनी दैनिक डायरी 'कलम-कुदाली' नाम से लिखी थी, जिसका महत्त्व 'पेपीस' की डायरी की तरह से बहुत था। परन्तु वह डायरी अब अनुपलब्ध है। आपने कई जीवनियाँ लिखीं। कई अनुवाद किये, जिनमें गोल्डस्मिथ के 'विकार आफ वेकफील्ड' का अनुवाद 'वाईकर भट जी' बहुत प्रसिद्ध है। 'धनुर्धारी' के वर्णनों में सूक्ष्म वर्णन इतने मिलते हैं कि मराठी में यथार्थवाद की परम्परा को चलाने वाले ये पहले लेखक कहे जा सकते हैं। 'व्यापारी भूगोल', 'नीतिधर्मपाठ" 'आर्यधर्म का इतिहास' जैसे विषयों पर जहाँ उन्होने ग्रन्थ लिखे, वहाँ वीरस्नुषा राधाबाई, तंट्या भिल्ल आदि कई जीवनियाँ भी लिखीं।

शिवराम महादेव परांजपे (१८६४—१९२९)—आप व्याजोक्ति-कुशल लेखक और वक्ता थे। आपकी शिक्षा महाड, रत्नागिरी और पूना में हुई। १८९२ मे डेक्कन कालेज से एम० ए० हुए। आपको वेदान्त पारितोषिक मिला। वे महाराष्ट्र कालेज में संस्कृत के अध्यापक बने। यह कॉलेज १८९७ में बन्द हुआ। १८९८ मे आपने 'काल' नामक पत्र

प्रकाशित किया। यह बहुत ओजस्वी पत्र था। १९०८ में इस पत्र पर राज-द्रोह का मुकदमा चलाया गया। वे स्वय अपने वकील बने। परन्तु आपको १९ महीने की कडी कैद हुई। १९१० में यह पत्र प्रेस-एक्ट के अन्तर्गत बन्द किया गया। बाद में आपने 'स्वराज्य' नामक पत्र निकाला। परन्तु यह विशेष नहीं चला। १९३७ में काग्रेसी सरकार में 'काल के चुने हुए निबन्धों' पर से पाबन्दी उठा ली गई। आपने निबन्धों के अतिरिक्त कुछ उपन्यास और नाटक भी लिखे।

गोपाल गणेश आगरकर (१८५६–१८९५)—निबन्धकार और समाज-सुधारक के नाते आगरकर का नाम तिलक के साथ-साथ लिया जाता है। आप 'केसरी' के आदि सस्थापक और फर्गुसन कॉलेज के प्रिंसिपल थे। 'सुधारक' पत्र के सस्थापक और सम्पादक थे। आपका जन्म सातारा जिले में टेंभू गाँव में हुआ। क-हाड में आपके नाना रहते थे। पूर्वजों का मूलस्थान अगरी होने से आपका यह नाम रखा गया। उनके पिता को काफी कष्ट में जीवन विताना पडा। ६ वर्ष की आयु में ही माता-पिता को छोडकर आपको शिक्षा के लिए नाना के पास जाना पडा। इनका विद्यार्थी जीवन बड़े कष्ट में बीता था। १८७५ में इतिहास, तर्क-शास्त्र और दर्शन लेकर आपने बी० ए० किया। बुद्धिवाद का जो समर्थन आपकी रचनाओं में आगे मिलता है, उसका श्रेय इसी आरम्भिक अध्ययन को है। बाद में आप 'केसरी' के सम्पादक बने। यद्यपि सजा दोनों को एक साथ हुई। फिर भी तिलक और आगरकर के बीच में मतभेद बढ गए। आगरकर ने अपना स्वतन्त्र पत्र प्रकाशित किया। आप अछूतोद्धार, विधवा-विवाह आदि कई समाज-सुधारों के समर्थक थे। समाचार-पत्रों के निबन्धों के तीन सग्रहों के अलावा 'वाक्य-मीमासा' नामक व्याकरण-विषयक पुस्तिका और शेक्सपीयर के 'हैम्लेट' का अनुवाद भी आपने किया।

आगरकर प्रजातन्त्र के बड़े समर्थक और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के महाराष्ट्र में पहले उद्गाता थे। पश्चिम का जो विचार-प्रवाह हमारे देश पर आया उसका स्वीकार सही स्पिरिट करने का आपका-विचार था। और इसी

कारण से संस्कृति-पुनरुज्जीवनवादियों से आपको तीव्र वाद-विवाद और विचार-सघर्ष करना पड़ा। आगरकर के कार्य की महत्ता महाराष्ट्र ने बहुत वर्षों बाद जानी।

डॉ० श्रीधर व्यकटेश केतकर—आधुनिक साहित्यकारों में जिन्हें सच्चे अर्थ में प्रकाण्ड पण्डित कहा जा सकता है, वे थे डॉक्टर केतकर। उनके साथ मराठी-साहित्य में एक 'कोश-युग' आरम्भ हुआ। जीवन के बारह वर्ष लगातार तेईस खण्डों में (प्रत्येक खण्ड बड़े आकार के प्रायः ५०० पृष्ठों का है) महाराष्ट्र ज्ञान-कोष का सम्पादन-लेखन-प्रकाशन-वितरण अकेले केतकर जी ने किया। यह ज्ञान-कोश अब अप्राप्य है। पहले इसका मूल्य १४०) था। इस महा ग्रन्थ में केवल दो उनके सहकारी थे, एक श्री० य० रा० दाते और दूसरे चि० ग० कर्वे। इस ग्रन्थ में करीब चार लाख रुपये खर्च हुए। यह द्रव्य महाराष्ट्र की मध्यवित्त जनता ने दिया। यह ज्ञान-कोश अनुवाद-मात्र नहीं है। महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार के शब्दों मे "केतकर निरे सयोजक या सग्राहक नहीं थे। वे विचार-प्रवर्तक भी थे। केतकर से पहले रानडे, तिलक और राजवाडे-जैसे प्रचण्ड प्रज्ञा-पुरुष महाराष्ट्र में हो गए। रानडे का बहुविषयक ज्ञान, दूरदृष्टि और धारणा तिलक की असाधारण बुद्धिमत्ता, देश-भक्ति और साहस तथा राजवाडे की संन्यास-वृत्ति, प्रतिभा और शोधपरायणता के कारण उनके नाम महाराष्ट्र में अजरामर हुए। केतकर इसी परम्परा के महापुरुष थे। केतकर और कर्तृत्व पर्यायवाची शब्द थे।"

उनके जीवन का मूल उद्देश्य था ज्ञान-पिपासा और ज्ञान-सग्रह की अदम्य लालसा। उनकी सबसे सस्मरणीय कृति है 'ज्ञान-कोश' का प्रथम खण्ड 'हिन्दुस्तान और ससार'। दूसरे-तीसरे खण्डों में 'वेदविद्या' और 'बुद्धपूर्व जग' पर उन्होंने बहुत-सी शोध-सामग्री दी है। 'वैदिक सशोधन' पर डॉक्टर प० ल० वैद्य ने लिखा था—"जब डॉक्टर केतकर ने यह लिखा तब प्रो० लुई रेनूकी 'बिब्लियोग्राफी वैदिक' नामक फ्रेंच वेद-सूची प्रकाशित नहीं हुई थी। फिर भी इस खण्ड के दूसरे से नौवें

अध्याय तक 'वेद-प्रवेश' नाम से ऐसा चिन्तन केतकर ने किया। 'वेद-प्रवेश' के १६५ पृष्ठों मे कई मनोरंजक अंश हैं। और्ध्व देहिक संस्कारो मे वेद-काल मे शवों को गाडने और जलाने दोनों तरह की विधियाँ थी। गाडने की पद्धति इन्डो जर्मन लोगों में तब से अब तक प्रचलित है। 'वेद प्रवेश' मे एक प्रकरण 'हजामत बनाने' पर भी है। 'गृह्य सूत्रों के समालोचन' मे प्राचीन भारतीय संस्कारो के साथ-साथ ग्रीक, रोमन लोगो के संस्कारो की तुलना है। 'वेद विद्या' का दूसरा महत्त्व का विषय है 'वेदकालीन इतिहास'। इस पर केतकर ने २०० पृष्ठ लिखे है। इसमे यज्ञ-संस्था की विस्तृत जानकारी है। यज्ञों से संहितीकरण का इतिहास केतकर ने खोज निकाला है। 'वैदिकदैवतेतिहास' नाम का एक और बड़ा अध्याय है। इसमे प्रो० मकडोनेल का अंग्रेजी और प्रो० हिलेब्रान्ट के जर्मन ग्रन्थो का परामर्श केतकर ने लिया है। 'वेद विद्या' के १४वे अध्याय मे डॉ० केतकर ने अतींद्रिय स्थिति की कल्पना पर प्रकाश डाला है। 'ज्ञान-कोश' के तीसरेख एड 'बुद्ध-पूर्व जग' के तीन चौथाई भाग मे केतकर ने वैदिक साहित्य मे मानव-वंश के इतिहास पर पुनरवलोकन किया है। इसमे प्रमुख वैदिक शब्दो की सूची दी है। 'वेदकालीन शब्द-सृष्टि' पर ३०० से अधिक पृष्ठ डॉ० केतकर ने लिखे हैं। बाद में ब्राह्मण्य का इतिहास विस्तार से दिया है। ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों पर और अन्य आख्यान-सूक्तो के आधार पर केतकर ने तत्कालीन लोक-स्थिति-निर्देशक अनुमान बड़े साहस से निकाले हैं। उनमें यास्क के समय जो भारवाही वेदपाठक थे, उन पर जैसा व्यंग यास्क ने यह कहकर किया था—'स्थाणुरयं भारवाह किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्''—उसी तरह से डॉ० केतकर को आधुनिक विद्वानों का भारवाही अर्थ मान्य नहीं है। उन्होंने मानव-वंश-शास्त्र की दृष्टि से वेद विद्या को फिर से आलोडित किया।''

डॉ० केतकर के समाज-विज्ञान-विषयक कार्य पर डॉ० प्रो० इरावती-कर्वे ने एक विस्तृत लेख लिखा है। उसमें डॉ० केतकर ने हिन्दू-समाज में जो गुण और दोष हैं उनका सारांश दिया है। केतकर के अनुसार ''हिन्दू

समाज में पर-मत-सहिष्णुता और पर-धर्म के देवताओं का आगीकरण, ये दो विशेष गुण हैं। यह उदार वृत्ति अन्य धर्मों में नहीं मिलती। हिन्दुओं का सबसे बड़ा दोष 'दृढीकरण की अल्पता' है। हिन्दू समाज में परस्पर विभक्त तीन हजार से अधिक जातियाँ और उप-जातियाँ हैं। इसके कारण हिन्दू-समाज के टुकड़े हो गए हों सो बात नहीं, परन्तु महान् बलिष्ठ राष्ट्र-निर्माण करने का विचार ही यहाँ नहीं पनप पाया।"[1]

फिर भी डॉक्टर केतकर के समाज-शास्त्र-विषयक सब विचार प्रगतिशील नहीं थे। उनमें प्रतिक्रियावादी जाति-उच्चता (रेस-सुपीरियारिटी), रक्त की विशेषता आदि भावनाओ का मिश्रण मिलता है। एक ओर उन्होंने वैज्ञानिक मानव-वंश-शास्त्रीय दृष्टि से हिन्दू-समाज-संघटना का पूरा दोषाविष्करण किया, निर्मम आलोचना की, दूसरी ओर ब्राह्मण के महत्त्व का भी समर्थन किया। इसी कारण राजनीतिक विचारों में उन्होंने तिलक या केलकर का तो आदर पूर्वक उल्लेख किया, परन्तु जवाहरलाल के विषय में उन्होंने पूर्वग्रहदूषित बातें कहीं।

डॉ० केतकर रूखे, शास्त्र-जड पण्डित ही नहीं थे, उन्होंने उपन्यास भी लिखे, जिनमें उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित 'भटक्या' (भटकने वाला, यायावर) उपन्यास में उनकी मानवीय सहानुभूति का बहुत सुन्दर चित्र मिलता है। उनके उपन्यासों पर वामन मल्हार जोशी ने समीक्षा करते हुए लिखा—"उनके उपन्यासों की प्रधान विशेषता यह है कि उनसे पहले मराठी उपन्यास बहुत संकीर्ण, पूना के सदाशिव पेठ मुहल्ले के वातावरण को लेकर ही लिखे जाते थे, उनका क्षेत्र उन्होंने विस्तृत बनाया। उनके उपन्यासों में मानव-स्वभाव पर बाह्य परिस्थितियों का विशेष अध्ययन प्रभाव दर्शित है।"

उपन्यास और आख्यायिका

मराठी उपन्यास का जन्म यात्रा-वृत्तान्तों में मिलता है। मराठी का

---

१. 'ज्ञान-कोष' . हिन्दुस्तान आणि जग, पृ० २७८।

पहला उपन्यास 'यमुना-पर्यटन' (१८३१ ई० के करीब) यद्यपि नाम-मात्र को सामाजिक है, तथापि उसकी रचना मनोरंजन-प्रधान ही अधिक है। अद्भुतरम्यता पर उनका अधिक ध्यान था। १८७० ई० के करीब मराठी में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रथा चल पडी। फिर भी १८८५ के पश्चात् उल्लेखनीय उपन्यासकार हरिनारायण आपटे हैं। हिन्दी के प्रेमचन्द की भाँति ही आपने मराठी मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ चित्र अंकित किये। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनका लक्ष्य था। दोनों को ही समाचार-पत्र की-सी शैली में खण्डशः लिखना पड़ा। अत. दोनों की शैली में कुछ अनावश्यक लम्बे और ऊबा देने वाले वर्णन मिलते हैं। आपकी प्रसिद्ध और ऐतिहासिक एव सामाजिक 'कादम्बरियो' के नाम हैं—'उष.-काल', 'सूर्योदय', 'सूर्यग्रहण', 'गडआला पण सिंह गेला' (ये चारों शिवाजी के राज्य-काल सम्बन्धी हैं) मी, 'यशवन्तराव खरे', 'पण लक्षात कोण घेतो।' अन्तिम उपन्यास मे यमुना नामक विधवा नायिका का चित्रण बहुत ही करुण और उदात्त है। बाद में हरिनारायण आपटे की शैली उन्हीं की अनुकृति पर कौटुम्बिक जीवन से सम्बन्धित किन्तु कम लोकप्रिय हुई।

उपन्यास के क्षेत्र में दूसरा युग वामन मल्हार जोशी से आरम्भ होता है। आपने तीन-चार ही उपन्यास लिखे हैं, परन्तु सभी विचार-प्रक्षोभक हैं। 'रागिणी', 'नलिनी', 'आश्रम-हरिणी', 'सुशीलेचा देव', 'इन्दु काले और सरला भोले' ये उनके मुख्य उपन्यास हैं। सबमें किसी दार्शनिक या नीति-शास्त्रीय समस्या की विवेचना प्रमुख है। डॉ० केतकर ने अपने उपन्यासों में समाज-शास्त्रीय दृष्टिकोण को प्राधान्य दिया और दोनों को ही मराठी के सामाजिक उपन्यास को विचार-क्षेत्र में आगे बढाने का श्रेय है। ऐतिहासिक उपन्यास इस काल में भी नाथमाधव और हडप ने शिवाजी-काल और पेशवाई को लेकर बहुत-से लिखे और वे बहुत लोकप्रिय भी हुए। राखालदास बनर्जी के 'शशांक', 'करुणा', 'अग्नि-वर्षा' आदि के अनुवाद इसी काल मे हुए। श्री शहा ने 'सम्राट् अशोक' और 'छत्रसाल' नामक दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित किये, जिनका अनुवाद हिन्दी में

प्रेमी जी ने प्रकाशित किया है।

अब उपन्यास केवल घटना-प्रधान या विचार-प्रधान न रहकर जन-जन के जीवन की आकांक्षाओं और स्वप्नो का प्रतिनिधि बन गया। आगे जिन पाँच उपन्यासकारो का विचार होगा, वे इसी प्रकार के लोकप्रिय और साहित्य के नवोत्थान के प्रतिनिधि उपन्यास-लेखक है : प्रो० ना० सी० फडके, वि० स० खाण्डेकर, पु० य० देशपाडे, ग० त्र्यं० माडखोलकर और विभावरी शिरूरकर। फडके उच्च वर्ग के पात्रो को चुनते हैं। उनके आरम्भिक उपन्यास अधिकाशत. रोमेटिक है। प्रेम का त्रिकोण विभिन्न रूपो मे व्यक्त हुआ है। परन्तु वर्णन की शैली बहुत सजीव और यथार्थवादी होने के कारण और भाषा का प्रवाह बहुत ऋजु और प्रसन्न होने से—'जादूगर', 'दौलत', 'अटकेपार' आदि उनके आरम्भिक उपन्यास और बाद के 'प्रवासी', 'बस नंबर बारह' आदि बहुत ही जनप्रिय बने। 'निरंजन' से आगे 'शाकुन्तल' और बाद मे अब तक फडके ने अपने सामाजिक उपन्यासो की पार्श्वभूमि के रूप मे राजनीतिक आन्दोलनो और पक्षो की मतावलियो को लिया, यथा 'निरंजन' और 'आशा' मे सन् '३० का सत्याग्रह, 'प्रतिज्ञा' मे राष्ट्रीय-स्वयसेवक-सघ और हिन्दुत्वनिष्ठ राजकारण, 'समर-भूमि' और 'उद्धार' मे समाजवाद और साम्यवाद, 'शाकुन्तल' में' '४२ का आन्दोलन, 'माझा धर्म' मे हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की समस्या आदि। प्रगतिशील साहित्य के सम्बन्ध मे आचार्य जावडेकर से जो उनका लेख-रूप मे लम्बा विवाद हुआ है, उसमे वे 'कला के लिए कला' वाले अपने पुराने सिद्धान्त से कुछ हटे हुए जान पडते हैं। फिर भी आनन्द-प्राधान्य उनकी रचनाओ मे मिलता है।

इनसे बिलकुल उल्टे वि० स० खाण्डेकर 'जीवन के लिए कला' मानकर चले। 'हृदयाची हाक', 'काचन मृग', 'दोन ध्रुव' तक उनकी रचनाओं में कोकण की प्राकृतिक पार्श्वभूमि पर काव्यमयी भाषा-शैली मे कृत्रिम कथानक-रचना मिलती है। परन्तु 'दोन-ध्रुव' के बाद 'उल्का' (जो उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और मैंने उसका हिन्दी अनुवाद किया है) 'हिरवा चाफा',

'दोनमने', 'रिकामा देव्हारा', 'क्रौंचवध' और 'अश्रु' तक उनकी शैली सहज रम्यता ग्रहण करती जाती है और गांधीवाद तथा समाजवाद के मनोहर मिश्रण का आदर्श उनके उपन्यासों में स्थल-स्थल पर व्यक्त हुआ है।

माडखोलकर ने 'मुक्तात्मा' से आरम्भ करके प्रगतिशील उपन्यासकारों में अपना कदम रखा। तब से उनके उपन्यास 'डाक बंगला', 'चंदनवाडी', 'अनघा' और 'स्वप्नातरिता' तक वे रोमांस और राजनीति का ऐसा मजेदार मिश्रण अपने उपन्यासों में उपस्थित करते रहे हैं कि कहीं आलोचकों ने उनकी 'दुहेरी जीवन', 'नागकन्या' आदि रचनाओं को अश्लील कहा है तो कहीं 'कान्ता', 'मुखवटे' आदि को प्रचारात्मक चीजें। उनकी 'नवे संसार' और 'प्रमद्वरा' ('४२ के आन्दोलन पर लिखी दीर्घ-कथा) सरकार द्वारा जब्त किये गए दो उपन्यास हैं।

आरम्भ से ही क्रान्तिकारी नायकों और क्रान्तिकारी आन्दोलनों का बहुत निकटतम चित्रण करते रहने के कारण उनकी शैली में सुन्दर भावोत्कटता है, यद्यपि वर्णन कहीं-कहीं यथार्थ से अति-यथार्थ पर उतर आते हैं। पु० य० देशपांडे माडखोलकर की ही भाँति नागपुर के हैं, परन्तु उनकी रचनाओं में सार्वजनीनता अधिक है। 'बन्धनाच्या पलीकडे' नामक उनके विद्रोही उपन्यास ने एक समय महाराष्ट्र में खलबली मचा दी थी। उत्तरोत्तर उनकी कला 'सुकलेले फूल' और 'सदाफुली' में बहुत ही विकसित होती गई। यद्यपि 'विशाल जीवन', 'काली रानी' और 'नवे जग' मे कुछ दुरूहता उनकी दर्शन-प्रधान शैली में आ गई है और पहले का-सा हल्का फुल्कापन जाकर वह भारी हो गई है, परन्तु मनोवैज्ञानिक विश्लेषण-सूक्ष्मता-क्षमता भी उतनी ही बढ़ती गई है। पु० य० देशपांडे इस बात के दिशा दर्शक हैं कि मराठी उपन्यास अब एक नई दिशा की ओर जा रहा है। वह खांडेकर के मानवतावाद और फड़के-माडखोलकर के फैशनेबुल राजनीतिक उपन्यासों से अधिक गम्भीर वैचारिक क्षितिज की ओर बढ़ रहा है। जो कमाल पश्चिम मे काफ्का (पोलैण्ड के प्रतीकवादी उपन्यासकार) या अल्डस हक्स्ले, लारेंस या वुल्फ ने कर दिखाया वह धीरे-धीरे मराठी मे प्रतिष्ठित किया जा

रहा है। इस दृष्टि से, मर्ढेकर की 'रात्रीचा दिवस' प्रयोग उल्लेखनीय है। श्रीमती विभावरी शिरूरकर नामक उपनाम के बुरके में छिपी, परन्तु आठ-दस वर्ष पूर्व मराठी-कथा-क्षेत्र में स्त्री का दृष्टिकोण बहुत स्पष्टता और बुलन्दगी से व्यक्त करने वाली महिला के दो उपन्यास 'हिन्दोल्यावर' और 'विरलेले स्वप्न' उल्लेखनीय हैं। टूटती हुई कुटुम्ब-व्यवस्था के वे बहुत अच्छे चित्र हैं। उन्हीं का एक नया उपन्यास 'बली' है।

यहाँ अधिक विस्तार से उपन्यास पर लिखा नहीं जा सकता परन्तु इस दिशा में मामा वरेरकर, गीता साने और कृष्णाबाई मोटे द्वारा चित्रित की हुई नारी का, विद्रोही नायिका का चित्र भुलाया नहीं जा सकता। साने गुरु जी ने बच्चों के विकासशील मन पर 'श्यामू की माँ' भारतीय संस्कृति-सम्बन्धी 'आस्तिक' और 'क्रान्ति', पुनर्जन्म' आदि राष्ट्रीयता-प्रचारक बहुत लोकप्रिय उपन्यास लिखे हैं। श्री० दिघे ने महाराष्ट्र के ग्राम-जीवन के सुन्दर चित्र 'पाणकला' और 'सराई' में उपस्थित किये हैं। मर्ढेकर, माधव-मनोहर, रघुवीर सामन्त, भिवलकर और माडगूलकर ने बहुत अच्छे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रयोग किये हैं। यह विभाग मराठी के आधुनिक साहित्य में सर्वाधिक परिपुष्ट है। अधुनातम उपन्यासों में श्री० ना० पेंडसे के 'गारम्बीचा बापू' और गो० नी० दाडेकर का 'शितू' है। इनके सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक चर्चा मैंने 'हंस' (१९३५) में 'तीन मराठी उपन्यासकार' और 'साहित्य-सन्देश' के उपन्यास-विशेषाक में 'मराठी के राजनीतिक उपन्यास' तथा 'औपन्यासिक मनोवैज्ञानिकता' नामक लेखमाला के प्रथम लेखाक में की है।

' गत दस वर्षों में मराठी उपन्यास में विविधता आई है और उसका क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है। र० वा० दिघे के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है ग्रामीण जीवन का चित्रण—जिसके अन्तर्गत भील आदि आदिम जातियाँ भी आ जाती हैं। मानसून, फसलों, बाढ, पर्वतीय जीवन आदि के वर्णन के साथ-ही-साथ उन्होंने जन-जातियों के स्वाभाविक मनोवेगों का जो चित्रण किया है उसने उपन्यास मे एक नई जान डाल दी।

श्रीधर देशपाण्डे टेकनीक में फडके के कला-सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं, पर उन्होंने अपनी कथाओं में महाराष्ट्रेतर स्थानो की पार्श्वभूमि ग्रहण करके उपन्यास के क्षेत्र को व्यापक बनाया है। वेडेकर ने केवल एक ही उपन्यास लिखा है 'रणांगण', पर उसकी घटनाओ का देश-विदेश दोनों से सम्बन्ध होने के कारण और उसके टेकनीक-कौशल के कारण उसका अपना अलग स्थान है। इस लेखक की मानव के प्रति गहरी सहानुभूति और अनुभूति की सचाई असन्दिग्ध है। 'टोकल' ग्रामीण जीवन के चित्रण के लिए सुप्रसिद्ध है। सन् १९४२ की घटनाओं के आधार पर भी कई सफल उपन्यासों की रचना हुई। शिखाडकर के उपन्यास 'वैष्णव' में एक साधारण आत्म-विश्वास-विहीन शिक्षक के चित्रण के लिए पृष्ठभूमि के रूप मे इन घटनाओं का उपयोग किया गया है। १९४० के पश्चात् पात्रों और पृष्ठ-भूमि के निरूपण में सामाजिक-आर्थिक विचारों का दबाव स्पष्ट ही बढता चला जाता है, किन्तु इस नये तत्व को उपन्यास अभी पूर्ण रूप से आत्मसात् नहीं कर सका है।" प्रा० कुसुमावती देशपाण्डे के ये शब्द बहुत यथार्थ हैं।

मराठी कहानी

आख्यायिका के क्षेत्र में पूर्वोक्त सभी उपन्यासकारों ने (पु० य० देशपाण्डे का अपवाद छोडकर) अपनी लेखनी सफलतापूर्वक चलाई है। इस क्षेत्र मे अगणित लेखक आधुनिक काल में प्रसिद्ध हैं। फिर भी पुराने खेवे के कुछ प्रमुख लघुकथा-लेखको के नाम यहाँ देना अनुचित न होगा। वि० सी० गुर्जर, दिवाकर कृष्ण, प्र० श्री कोल्हटकर, कुमार रघुवीर, बोकील, दोंडकर, लक्ष्मणराव सरदेसाई, मुक्ताबाई लेले, य० गो० जोशी, वामन चोरघडे, टोकल, अनन्त काणेकर, शामराव ओक आदि। आख्यायिका के विषय और तन्त्र (टेकनीक) में भी पर्याप्त सुधार और प्रगति होती गई। वि० स० खाडेकर ने 'रूपक-कथा' नामक खलील जिब्रान और ईसप के दृष्टान्तों-जैसी काव्यमयी छोटी छोटी कथाएँ बहु-प्रचलित कीं। उसी प्रकार से लघुतम कथाएँ भी बहुत-सी लिखी गईं, जिनमें व्यंग की प्रधानता दी

गई है। चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान कहानियाँ घटना-प्रधान कहानियों से अधिक प्रचलित हैं। छोटी-छोटी कहानियाँ, जिनमें मोपाँसा की भाँति मानव-प्रकृति के कुछ वर्णित स्थलों का अंकन हो या ओ० हेनरी की भाँति सहसा परिवर्ती अन्त से कोई चमत्कार घटित हो, या रूसी कथाकारों की भाँति वास्तविक जीवन की विषमता का कटु-कठोर चित्रण हो—मराठी में अधिक प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सरस्वती-प्रेस से प्रकाशित गल्प-ससार-माला के मराठी विभाग की वामन चोरघड़े द्वारा लिखित भूमिका पठनीय है।

प्रा० म० ना० अदवन्त ने 'महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका' में आधुनिक मराठी कहानी पर एक समीक्षात्मक लेख लिखा था, जिसके अनुसार—

"मराठी कहानी के इतिहास पर सरसरी दृष्टि डालने पर हमें मालूम होगा कि प्रत्येक काल-खण्ड में उसके स्वरूप में परिवर्तन होता गया है। आशय और अभिव्यक्ति दोनों मे वह प्रगतिशील रही है। स्व० हरि-नारायण आप्टे जी के समय की सीधी-सादी बालबोध कहानी को श्री वि० सी० गुर्जर जी ने आकर्षक और कलात्मक रूप दिया। चरित्र-चित्रण की तरफ ध्यान देते हुए श्री दिवाकर कृष्ण ने कहानी के उस अंग को पुष्ट किया। प्रो० ना० सी० फडके ने कहानी को तन्त्रबद्ध, सुगठित स्वरूप प्रदान करके उसे आकर्षक सतरगी भाषा का अभिनव परिधान पहनाया और उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगाए। श्री खाडेकर जी ने उसे जीवन के प्रति उन्मुख और आदर्शवादी बनाया। श्री य० गो० जोशी और मोकिल जी उसे घरेलू वातावरण मे घुमा लाए। श्री लक्ष्मणराव सरदेसाई ने उस पर गोमातक की पार्श्वभूमि का रग चढाया। और प्रो० वामन चोरघडे ने उसे काव्यात्मक रूप दिया। यों १६३६ तक कहानी का क्षेत्र अनेक लेखक-लेखिकाओं से फूला-फला और इस क्षेत्र में लघुतम कथा-जैसी नई चीज नये सिरे से अपना आसन दृढ करती हुई विविध रसों का पोषण करती चली, जिसमें ऐसा लगता था कि मराठी कहानी उत्कर्ष के चरम बिन्दु पर पहुँच गई है।

पर इसी समय दूसरा महायुद्ध छिड गया और १६३६ से कुछ समय तक इस क्षेत्र मे बडी ढिलाई आ गई। अच्छी कहानियो का सृजन न हो सका और यह शिकायत सुनाई दी कि आजकल अच्छी कहानियाँ लिखी ही नही जाती। पुरानी पीढी के प्रतिनिधि कहानी-लेखक श्री फडके, खाण्डेकर आदि का लेखन इस क्षेत्र मे अपेक्षाकृत कम ही होता रहा। नये लेखक अभी हाल ही मे इस क्षेत्र मे पदार्पण कर रहे थे। इन चार वर्षों की अवधि में लघुकथा स्पर्धाएँ भी शुरू की गई, ताकि मराठी-कहानी-साहित्य मे अच्छी मौलिक कहानियाँ लिखी जायँ। पर इससे कोई लाभ न हुआ। श्रेष्ठ कहानियो का अभाव ही रहा।

१६४२ के अनन्तर इस क्षेत्र मे परिवर्तन हुआ। नये कहानी-लेखक इस क्षेत्र मे आगे बढे। उनकी कहानियाँ पुरानी बँधी हुई परिपाटी को छोडकर नये स्वरूप मे उपस्थित हुई। इन नई कहानियो मे जीवन के अधिक यथार्थ, सूक्ष्म और विभिन्न पहलुओ तथा भूमिकाओ के दर्शन होने लगे। मनोवैज्ञानिक सत्य के नये स्वरूप का आविष्कार उसमे पाया गया। तन्त्र की बँधी शृखला को तोडकर मराठी-कहानी स्वच्छन्द विहार करने लगी। कारीगरी से बढकर कला-निर्मिति को ही श्रेष्ठ माना गया, जिससे घटनाओ का ढाँचा ढीला पड गया और घटनाओ से भी उनके पीछे, मूल मे कार्य करने वाली चित्त-वृत्ति को महत्त्व दिया गया। मानव-मन की सूक्ष्मताओं की खोज मे चरित्र-चित्रण का नया तन्त्र उसने अपनाया। आशय और अभिव्यक्ति दोनो मे नई कहानी ने आमूलाग्र परिवर्तन कर डाला।

गत आठ वर्षों मे मराठी के कहानी-क्षेत्र मे नाम कमाने वाले श्री अरविन्द, गोखले श्री गगाधर गाडगील, श्री पु० भा० भावे, श्री व्यङ्कटेश माडगूलकर आदि लेखको की कहानियों को पढने पर हमे स्पष्ट मालूम होगा कि आशय और अभिव्यक्ति में किस प्रकार कितना परिवर्तन हो गया है। यदि यह मान ले कि आजकल के कहानी-लेखको मे ये चारो प्रतिनिधि कहानी-लेखक हैं तो स्वभाविक ही उनकी कहानियो के गुण-दोष ही आज की

कहानी के गुण-दोष हो सकेंगे। और यदि हम मराठी-कहानी को समझ लेना चाहते हैं तो इन चारों की कहानियों को जानने और गुनने की आवश्यकता है।

नये कहानी-लेखकों ने पुराने संकेतों को बहुत अंशों में ठुकरा दिया है। पहली बात तो यह है कि नई कहानी जीवन की सभी तहों में पैठकर मानव के जीवन और मन का कुतूहलता से निरीक्षण कर रही है जिससे नई कहानी का स्वरूप बहुत व्यापक हुआ है।

समाज के विविध स्तर, अलग-अलग स्वभाव और उम्र के लोग, जुदे-जुदे अनुभव और विभिन्न घटनाओं का आविष्कार आज की कहानी मे हो रहा है। खासकर, दूसरा महायुद्ध, देश-विभाजन, जहाँ-तहाँ फैला हुआ भ्रष्टाचार, हत्या-काण्ड, आदि जो घटनाएँ गत आठ-दस वर्षों में घटित हुई उनका असर भी नई कहानी पर हुए बिना रहा नहीं। आज की नूतन कहानी नवकाव्य की नाई उजड़ी हुई दुनिया से निर्माण हुई है। आज वह मानव कहानी का विषय बन गया है जिसका मानव-आदर्शों पर से विश्वास उठ गया है, जिसके जीवन का आनन्द और सौन्दर्य नष्ट हो गया है और यन्त्र-युग के जीवन व गरीबी की चक्की में पिस जाने से जो सत्ता-हीन बना है। आज कई कहानियों मे उनका चित्रण पाया जाता है जो देश के विभाजन के कारण प्रज्वलित आग में झुलसकर निकले हैं। निम्न श्रेणी के उपेक्षितों के जीवन के बारे में रहने वाला कुतूहल भी आज की कहानी की कथावस्तु बना है, इससे आज की कहानी की परिधि विशाल हो गई है। पुरानी कहानी के चहुँओर रहने वाली चहारदीवारी ढा रही है और उसे विशाल विश्व के दर्शन करने-करवाने की चेष्टा नये कहानी-लेखक कर रहे हैं, यह मार्के की बात है।

आज की नई कहानी में कथा-वस्तु के लिए महत्त्व नहीं है। तन्त्र की बँधी हुई चौखट भी वह तोड बैठी है, जिससे आज की नूतन कहानी में प्रतिभा के स्वच्छन्द विहार को अधिक अवकाश मिला है। एकाध मनोवृत्ति, कोई भाव-छटा या अंतर्द्वन्द्व भी कहानी का विषय हो सकता है।

'कथावस्तु' शब्द के रूढ अर्थ को छोडकर अत्यन्त सूक्ष्म और सरल मनोवृत्तियों को भी लेखकों ने 'कथावस्तु' बनाया है। पुरानी परम्परा के बँधे हुए सकेतों पर किया हुआ यह आघात कतिपय सज्जनों को असह्य हो गया और उन्होंने नई कहानी के विरोध मे आवाज उठानी शुरू की। श्री गगाधर गाडगीळ की 'मिन चेहच्याम्ची सध्याकाल', भावे जी की 'ध्यास', अरविंद गोखले की 'माहेर' और 'कातरवेल' आदि कहानियो में 'कथावस्तु' तो नहीं के बराबर है; फिर भी यह कहानियाँ श्रेष्ठ मानी गई हैं।

आज की नवीन कथा अन्तर्मुख हो गई है। बाह्य भावनाओं के आविष्कार में ही सतुष्ट न रहकर मनुष्य के मन की छिपी प्रवृत्तियों और सज्ञा-प्रवाहों का चित्रण वह पैनी नजर से और कला के सहारे व्यक्त कर रही है। परिणामस्वरूप उसके सघर्ष के स्वरूप में सहज ही परिवर्तन हो गया है।"

नाटक और रगमच

काव्य से जुदा हुआ साहित्य का दूसरा प्रधान अग है नाटक। सौभाग्य से मराठी का रगमच बहुत विकसित अवस्था मे रहा है। १६४३ ही उसका शतसावत्सरिक उत्सव भी महाराष्ट्र में सर्वत्र मनाया गया। इस रगभूमि के विकास का श्रेय जैसे सफल अभिनेता, रसिक प्रेक्षक और उत्तम गायकों को है, वैसे ही उच्च कोटि के नाटककारों को भी है। आधुनिक नाटक का आरम्भ वैसे ही पौराणिक-ऐतिहासिक कथावस्तु को लेकर हुआ, जैसे अन्य भाषाओं मे। सन् १८८२ के बाद पच्चीस वर्ष तक सगीत का रगमच पर बहुत विकास होता रहा। अण्णा किर्लोस्कर महाराष्ट्र मे रगभूमि को सर्वाधिक लोकप्रिय करने वाले नट नाटककार थे उनके पश्चात् देवल को यह श्रेय देना चाहिए कि उन्होंने नाटकों को उनके प्राचीन केंचुल मे से बाहर निकालकर खुली हवा में सामाजिक प्रश्नो की चर्चा मे सलग्न किया। वृद्ध-विवाह की प्रथा पर 'शारदा' नामक उनका नाटक बहुत ही लोकप्रिय रहा। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर ने नाटकों में साहित्यिकता का सूत्रपात किया। आपके 'मूकनायक'

'प्रेमशोधन', 'मतिविकार' आदि नाटकों ने अद्‌भुत रम्यता (रोमांस) की नाटकों में अवतारणा की, परन्तु उनके नाटकों में यथार्थ का निरूपण नहीं था। कृत्रिमता भी बहुत कुछ थी। कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर का 'कीचक वध' (१६११ ई०) सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ। इतिहास अथवा पुराण की कथा लेकर उसे आधुनिक काल और समस्याओं पर घटित करने की खाडिलकर की शैली बहुत ही तीक्ष्ण और प्रभावशाली थी। माधव-नारायण जोशी ने मराठी-नाटकों को सामाजिक यथार्थवाद सिखाया। परिहास के अवगुण्ठन में तीव्र सामाजिक व्यंग आपने लिखे, जिनमें 'संगीत-विनोद', 'संगीत स्थानिक स्वराज्य अथवा म्युनिसिपैलिटी' और 'संगीत वहाडचा पाटीन' बहुत प्रसिद्ध हैं।

नाटक के क्षेत्र में वैसे तो अनेकानेक प्रयोग हुए। शेक्सपीयर के अनुवादों (त्राटिका, झुंझारराव) से लगाकर कैरेल कपेक की 'मदर' (आई) नाटिका और इब्सन के 'डाल्स हाउस' (घरकुल) के अनुवादों तक कई चीजें यूरोपीय रंगमंच से मराठी मंच ने लीं। परन्तु प्रान्तीय भाषाओं में से अन्य किसी भाषा के नाटक मराठी में नहीं के बराबर अनुवादित हुए। हिन्दी पर जिस प्रकार बँगला की छाया स्पष्ट है, (डी० एल० राय की नाटकों में और शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय की उपन्यास में तथा रवीन्द्रनाथ की काव्य में) मराठी में बंकिम, शरच्चन्द्र के अनुवाद तो हुए, परन्तु नाटकों में कहीं भी बंगाली का प्रभाव नहीं दिखाई देता। महायुद्धोत्तर मराठी नाटक के इतिहास में तीन नामों का उल्लेख प्रमुख रूप से करना होगा—गडकरी, वरेरकर, अत्रे। गडकरी एक प्रकार से हिन्दी के 'प्रसाद' थे। दोनों की प्रतिभा का स्वरूप रोमांटिक था। दोनों की शैली काव्यात्मक थी। अन्तर था तो इतना ही कि जहाँ 'प्रसाद' ने बौद्धकालीन ऐतिहासिक वातावरण का विशेष आश्रय लिया, गडकरी ने सामाजिक प्रसगों की और समस्याओं की ही विशेष विवेचना की। 'प्रेम सन्यास' मे विधवा-विवाह का, 'पुण्य-प्रभाव' में सतीत्व के प्रताप, 'एकच' प्याला' मे शराब के दुष्परिणाम का चित्र गडकरी ने उपस्थित किया। गडकरी के बाद वैसे तो कई नाटककार

हुए, जिन्होंने मराठी-रंगमंच को उर्वर बनाया और इसका समस्त श्रेय केवल नाटक लेखकों को ही नहीं, अपितु नट, नायक और उस मनोरंजन में सक्रिय योग देने वाली जनता को भी दिया जाना चाहिए। फिर भी बाल गंधर्व (नारायणराव राजहंस नामक अभिनेता को स्व० लोकमान्य तिलक ने इस पदवी से विभूषित किया था) और उनकी कम्पनी द्वारा खेले गए आधुनिक राजनीतिक आशय से भरे पौराणिक कथानकों वाले नाटकों को विशेष श्रेय है। वीर वामनराव जोशी और सावरकर, अच्युत बलवंत कोल्हटकर और टिपनीस तथा स० अ० शुक्ल आदि के ओजस्वी ऐतिहासिक नाटकों ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। इस क्षेत्र में नवयुग उपस्थित करने का समस्त श्रेय भार्गवराम विट्ठल उर्फ मामा वरेरकर को है। आपने इब्सन की शैली को अपनाकर एक नई नारी-सृष्टि निर्मित की। राष्ट्रीय जागरण में जो सहयोग स्त्रियों से मिला उसका श्रेय मामा की 'सफ्रेजेट' नाटिकाओं को है। आपने मिल-मजदूरों के प्रश्न, मठों के और बुवाशाही के (गुरुडम चलाने वाले महन्तों के) प्रश्न, अछूतोद्धार और खद्दर के प्रश्न अपने नाटकों द्वारा सुलझाने का प्रयत्न किया। स्पष्टतः प्रचार उनके नाटकों की आत्मा बन गई। नाटिका (एकांकी) सम्प्रदाय मराठी में आप ही की प्रेरणा से लोकप्रिय बना। आप समय के साथ प्रगतिशील हुए और १९४३ में 'सिंगापुरातून' नामक में साम्यवादी विचार-सरणि का भी उन्होंने पोषण किया है।

जहाँ सामाजिक प्रश्नों की ओर रोमांटिक और यथार्थवादी दृष्टिकोणों से गडकरी तथा वरेरकर ने मराठी रंगमंच को आकृष्ट किया। अत्रे ने एक बिलकुल नये ढंग से (जिसे कुछ हद तक बर्नार्डशा का ढंग कहना चाहिए) प्रश्नों का परिहासात्मक पहलू उपस्थित किया। मा० ना० जोशी ने जो 'म्युनिसिपैलिटी' का घोर व्यंग-चित्र अपने स्थानिक स्वराज्य में उपस्थित किया था, उसीको कुछ आगे बढ़ाकर अत्रे ने अपने नाटकों में हास्य (परिस्थितिजन्य, शब्दजन्य तथा चरित्रजन्य) अतिरेक, समाज-मीमांसा, विचार प्रक्षोभन का एक विचित्र 'मिक्स्चर' मराठी मंच पर प्रस्तुत किया,

जिसे जनता ने वर्षों तक बहुत ही सराहा । 'साष्टांग नमस्कार' में प्रत्येक पात्र एक-एक खब्त (फैड) का पोषक है। उन खब्तों के 'उद्याचा संसार' में, वैवाहिक असन्तोष के 'लग्नाची बेडी' में, आधुनिक प्रेम-विवाह के 'घरबाहेर' में पुरानी नई गृह-व्यवस्था के संघर्ष के बहुत ही आकर्षक चित्र उपस्थित किये गए हैं। आचार्य अत्रे ने पैरोडियाँ लिखकर जो कमाल हासिल किया था, उसमें मंच पर अपना 'अतिहसित' प्रदर्शित करके चार चाँद लगा दिये। बाद में वे सिनेमा के क्षेत्र में उतरे, वहाँ भी चमके, मगर इधर आकर नाट्य-क्षेत्र से जैसे उन्होंने सन्यास-सा ले लिया है, जो दोनों मराठी—नाटक के तथा अत्रे के हक में ठीक नहीं हुआ। मराठी-रंगमंच उनसे अभी भी बहुत अपेक्षा कर सकता है। आधुनिकतम प्रयोगों में वर्तक, अनन्त काणेकर, के० ना० काले का नाट्यमन्वन्तरमण्डल, 'लिटिल थियेटर' और इधर लोक-नाट्य के जो नए सोवियत-पद्धति के प्रयोग चल रहे हैं, इन सभी सत्प्रयत्नों ने सिनेमा से पराजित रंग-भूमि को पुनरुज्जीवित और सप्राण बनाने में योग दिया है।

नाटक के ही सिलसिले में 'नाट्य-छटा' का भी उल्लेख गौरव से करना चाहिए, जो मराठी साहित्य की अपनी चीज है। स्व० 'दिवाकर' आदि लेखकों ने इसे अपनाया। इसमें 'एकमुखी-भाषण' द्वारा सामाजिक विरोधों को स्पष्ट किया जाता है। एक प्रकार से यह संवादों में लिखे हुए व्यंग-चित्र ही समझिए। यद्यपि इस प्रकार के लेखन का चलन अब कम हो गया है। तथापि यह एक अच्छा साहित्य-प्रकार है, जिसे हिन्दी में अपनाया जाना चाहिए।

मराठी नाटको का विकास

मराठी-रंगमंच का आरम्भ सन् १८४३ में होता है। तब विष्णुदास भावे ने 'सीता-स्वयंवर' नाम का पहला नाटक खेला। विष्णुदास ने यह तथा अन्य नाटक सांगली राजा के कहने पर खेले थे। १८५१ में राजाश्रय जब टूट गया तब भावे की कम्पनी घूम-घूमकर खेल करने लगी। उन्हीं-

की नकल पर और नाटक-कम्पनियाँ बनने लगीं।

वैसे तो नाटक की परम्परा लोक-नाटक के रूप में इससे पहले दक्षिण में थी। कर्नाटक के 'यक्षगान' 'भागवत' के रूप में यह नाटक होते थे। यह दाक्षिणात्य नाट्य नर्तन-प्रधान था। विष्णुदास के नाटक में भी यही 'भागवत' पद्धति थी। यानी सूत्रधार स्टेज के एक ओर खड़ा रहकर पखावज पर गाना गाता था। उसके बाद मोर पर बैठी सरस्वती आती। सरस्वती बना हुआ लड़का खूब नाचता। बाद में गन्धर्व आते। अन्त में राक्षस। यह रामलीला जैसे नाटक द्राविड या कर्नाटक पद्धति के थे। परन्तु ये अधिक दिन तक नहीं चले। विष्णुदास के उन नाटकों को परिहास में 'तागडथोम' नाटक कहते थे। 'तागडथोम' पखावज के बोल थे। इन नाटकों के बाद धीरे-धीरे 'फार्स' खेले जाने लगे। गम्भीर विषयों पर भी 'फार्स' खेले, जाते।

एक ओर ऐसे पौराणिक नाटक खेले गए, तो दूसरी ओर साहित्यिक। साहित्यिक नाटकों को 'बुकिश' नाटक कहते थे। राघोपन्त की इचलकरजीकर मण्डली ने ये नाटक शुरू किये। पौराणिक नाटक बहुत अधिक प्रहसनात्मक थे तो 'बुकिश' नाटक बहुत गद्यात्मक। इस द्वन्द्व में से मराठी-रंगमंच का छुटकारा अण्णा किर्लोस्कर ने किया। मराठी रंगमंच को उन्होंने सच्चे समाज-रंजन का साधन बनाया। किर्लोस्कर की इच्छा मराठी में 'ऑपेरा' लाने की थी। परन्तु केवल रंजकता रंगभूमि को अधिक दिन तक नहीं टिका सकती।

राष्ट्रीयता का प्रचार

१८७० ईस्वी में ही समाज पर व्यंग करने वाली नाटिकाएँ लिखी गईं। उनके नाम होते 'तरुणी-शिक्षण-नाटिका' और 'मोर एल० एल० बी० प्रहसन'। इसी व्यंग-परम्परा को आगे बढ़ाया नाट्याचार्य खाडिलकर ने। उन्होंने महाराष्ट्र नाटक मण्डली की मारफत यह कार्य किया। जब तक 'कीचक वध'-जैसे तत्कालीन सरकार द्वारा जब्त नाटक वे लिखते रहे उनकी

ख्याति घटती गई। परन्तु ऐतिहासिक वीरता दर्शक नाटकों से कहाँ तक काम चलता? जैसे रंगभूमि केवल रंजन का माध्यम नहीं बनी रह सकती, वैसे ही कोरे आदर्श पर उसे नहीं चलाया जा सकता। १९११ ईस्वी के बाद खाडिलकर गद्य-नाटकों से संगीत-नाटकों की ओर मुड़े। परिणाम यह हुआ कि नाटक-कम्पनियों को द्रव्य-लाभ तो खूब हुआ, परन्तु नाट्य-गुणों में नाटक हीनतर होने लगे।

खाडिलकर के बाद गडकरी बहुत यशस्वी नाटककार हुए, परन्तु तब तक उर्दू और पारसी-रंगमंच का असर नाटकों पर से नहीं गया था। गडकरी के नाटक अपने भाषा-प्रभुत्व के कारण बहुत सफल हुए। अलंकारों की आतिशबाजी, ज्यों-ज्यों दर्शक अधिक प्रबुद्ध हुए, उनकी दिलचस्पी को टिकाये न रख सकी।

दो महायुद्धों के बीच

इसके बाद महायुद्धोत्तर मराठी नाटक में मामा वरेरकर नाटककार और पेंढारकर दिग्दर्शक ने बहुत बड़ा कार्य किया। उन्होंने पौराणिक-ऐतिहासिक या रोमेंटिक विषयों के नाटकों की ओर से नाटककारों का ध्यान सामाजिक नाटकों की ओर खींचा। मराठी-रंगमंच पर यथार्थवाद का बीजारोपण मामा वरेरकर की समर्थ लेखनी से ही हुआ। मामा ने अपने 'सत्तेचे गुलाम', 'हाच मुलाचा बाप', 'सन्याशाचा संसार', 'नामानिराला', 'सिंगा-पुरातून', 'सारस्वत' आदि अनेक नाटक नाटिकाओं में समाज के कई प्रश्न लिये और उनका सुधारवादी, गांधीवादी और इधर आकर प्रगतिशील हल भी स्पष्टतः दरसाया। मामा वरेरकर के नाटकों में यह सामाजिक सोद्देश्यता का स्वर कला की दृष्टि से हानिकारिक माना गया।

वरेरकर से विपरीत मोलियेर और बर्नार्ड शा की प्रहसन-परम्परा को अपना आदर्श मानकर आचार्य प्रह्लाद केशव अत्रे ने अनेक नाटक लिखे। जिनमें सामाजिक दोषों पर तीव्र कुठाराघात किये गए। उनके अस्त्र थे व्यंग और उपहास। परिणाम यह हुआ कि 'साष्टांग नमस्कार' से 'कवडी

चुम्बक' तक उनके अनेक नाटकों के पात्र व्यग-चित्रों-जैसे जान पड़े। विनोद भी बहुत वार मर्यादा को लाँघकर अनुल्लेखनीयता तक उतर आता है। वैसे 'लग्नाची बेडी' (विवाह बन्धन), 'घराबाहेर' 'उद्याचा ससार' उनके सफल नाटक हैं। 'वदेमातरम्' इतना सफल नहीं हुआ। अत्रे के नाटकों का प्रधान गुण उनकी रजकता है। उनमें भरपूर 'विट' है।

इन दो साहित्यिक नाट्य-धाराओ के बीच अनन्त हरी गद्रे, वर्तक आदि जब अपने एकाकी और एक ही सेट पर समूचे नाटक रचने के प्रयोग कर रहे थे तब कुशल दिग्दर्शक के अपने अनुभव को ध्यान में लेकर मा० गो० रागेणकर भी इसी बीच में अपना वृत्तपत्र-व्यवसाय छोडकर रगभूमि में उतरे। 'नाट्यमन्वन्तर' नाम से एक 'रिपोर्टरी' थियेटर-जैसी अपटु (अमेच्योर) अभिनेताओं की एक सस्था उन्होंने शुरू की। और इब्सेन के 'डाल्स हाउस' के अनुवाद 'घर-कुल' से शुरू करके धीरे-धीरे उन्होंने 'कुल वधू', 'माझे घर', 'वहिनी', 'रभा' आदि नाटक लिखे, जो बहुत ही यशस्वी हुए। 'कुल वधू' के तो सैकडों 'प्रयोग' (मराठी में नाट्य-प्रदर्शन के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है) नाट्य-निकेतन ने किये और अन्य शौकिया नाटक-मण्डलियों द्वारा और स्कूलों-कालिजों में भी किये गए।

फरवरी १६४६ में 'अभिरुचि' (मराठी मासिक) में लिखते हुए 'आशुतोष' ने लिखा था—"जिन्हें सजीव नाट्य सस्थाओं में ऊँचा स्थान दिया जा सकता है ऐसी दो सस्थाएँ हैं . 'नाट्य निकेतन' और 'नाट्य सगम'। श्री रागणेकर को इस क्षेत्र में आते ही उत्तम सफलता मिली, इसका कारण उनकी अन्य बातों के साथ-साथ उनका व्यावसायिक दृष्टिकोण है। नवीन नाटक को रगमच पर अधिक समय तक पुनरावृत्ति न करके जनता पर उसका पूरा असर होने से पहले ही उसे बन्द करके, दूसरा नाटक निर्माण करने और दर्शकों को पुन. पुनः रगभूमि की ओर खींचकर लाने के कारण ही उन्हें पूरी सफलता मिलती रही। इस सस्था द्वारा रगभूमि पर खेले जाने वाले सभी नाटक यदि एक ही लेखक यानी रांगणेकर के न होते तो वैचित्र्य का लाभ दर्शकों को अधिक मिला होता। रागणेकर के सब नाटकों में भिन्न-

भिन्न विषय होने पर भी सब नाटक एक ही दृष्टिकोण से निर्मित हैं और मध्य-वित्तवर्ग के परिवार-प्रश्नो को लक्ष्य करके लिखे गए हैं। इससे विषय की नूतनता न होने पर भी ये नाटक इतने सफल क्यों हुए हैं? इनका उत्तर उनका उत्कृष्ट निर्देशन और अभिनय है। रगमच पर नाटक आने से पहले वे नाटक अत्यन्त परिश्रम पूर्वक खेले गए हैं, इससे ये नाटक अनुरञ्जन की दृष्टि से भी सदा प्रथम श्रेणी के होते हैं। बहुत-सा समय बीत जाने के बाद उन्होने 'कुलवधू' का एक नाट्य प्रदर्शन किया तो उस खेल पर दर्शकों का टिड्डी-दल-सा उमड पड़ा। इसका कारण श्रीमती ज्योत्स्ना बाई भोले का उत्तम गायन और सहज सुन्दर अभिनय है। इस नाटक के गानो की तर्जें सगीत-कलानिधि मास्टर कृष्णराव ने दी हैं और ज्योत्स्ना-बाई ने भी वे गाने परिश्रमपूर्वक तैयार करके अपने मधुर कण्ठ से शीघ्र रसिकमान्य बनाए। 'कुलवधू' ने रागणेकर के सभी नाटकों मे उच्चांक प्राप्त किया, इसका श्रेय ज्योत्स्नाबाई को भी है। रागणेकर के बाद के नाटक 'माझे घर' और 'वहिनी' (भाभी) इतने सफल नहीं हुए। नाट्य-निकेतन के पास सर्व श्री पण्डित, अविनाश, वर्दे, मामा पेंडसे (और नये आये हुए पु० ल० देशपांडे) जैसे नये नट और श्रीमती ज्योत्स्ना, मगला रानडे, ललिता पवलेकर, श्रीमती मराठे-जैसी अभिनय-कुशल नटियाँ हैं। अतः इस सस्था का भविष्य निस्सन्देह उज्ज्वल है।"

रागणेकर के बाद

रागणेकर के बाद श्री देसाई ने उन्हींकी सस्था के स्तर पर 'नाट्य-सगम' नामक एक सस्था चलाई, जिसमे 'अर्ध्या वाटेवर' (आधी राह पर) नामक नाविन्यपूर्ण नाटक बहुत प्रख्यात हुआ। केसरबाई बांदोडकर और सरोज बोरकर इन दो नटियों के सहारे यह संस्था चल रही है। बाल-मोहन संगीत-मंडलो में से अलग निकलकर नागेश जोशी, कुलटे, कोरडे और छोटा गंधर्व ने 'कला विलास' नाम से नाट्य-सस्था स्थापित की। इसने 'फुलपाखरें' (तितलियाँ) 'मैलाचा दगड', (मील का पत्थर) और

'देव माणूस' (देवता आदमी) ये तीन नाटक खेले। इस संस्था मे अभिनेताओ का सहकार्य बहुत प्रशंसनीय था। अन्य संस्थाओ मे 'प्रफुल्ल' और 'संयुक्त नट संघ' के अलावा नागपुर का 'नाट्य-मंदिर', जिसने नाना जोग के दो नाटक 'चित्रशाला' और 'सोन्याचे देव' खेले, उल्लेखनीय है। बम्बई मे मराठी-साहित्य-संघ १९४३ से प्रतिवर्ष एक नाट्य-महोत्सव मनाता है, जिसमे दर्जनो नाटक खेले जाते है।

१९५० मे वार्षिक साहित्य-समालोचन मे 'अभिरुचि' के 'निषाद और शमा' ने लिखा था—"नट हैं, परन्तु नाटक कम है और नाट्य-गृह तो प्रायः हैं ही नहीं। यह शिकायत हर साल पिछले रोकड-बाकी की तरह चालू है। नाट्य-महोत्सव अब भी होते है परन्तु दस बरस पुरानी सप्राणता अब कम हो गई है। बम्बई मे म्युनिसिपल-नाट्य-गृह शीघ्र बनाया जायगा—ऐसा अखबार कहते हैं, परन्तु बडाला-जैसे उपनगर मे वह क्यो बनेगा यह समझ मे नहीं आता। भारतीय विद्याभवन का हाल महगा होता है इसलिए बम्बई के नाटक परेल के ठाकरसी-हाल के साधारण नाट्य-गृह मे होते है। मामा वरेरकर का नाटक 'जिवाशिवाची भेट' उनके उपन्यास 'सात लाख मे से एक' के आधार पर लिखा गया। परन्तु उसे देखने अधिक दर्शक नहीं आए। ऐसी अवस्था मे रांगणेकर का 'नाट्य-निकेतन' अपने स्थान पर जमी हुई एक-मात्र कम्पनी है। डाक्टर वर्टी का 'राणीचा बाग' और खुद उनका 'कोणे एके काली', अपने-अपने ढंग पर सफल नाट्य प्रयोग रहे। दामुअण्णा मालवणकर का नाट्य-संघ भी खेल करता है। वह 'दाजी' नामक ताम्हणकर का हास्य-पात्र नाटक रूप से मंच पर लाया। शौकीन नाट्य-संघो की संख्या बढ रही है। अनन्त काणेकर ने मोमिन के नाटक का अनुवाद 'फॉस' किया। इसमे दो ही पात्र है। शास्त्री, भावे और ओक ने एकांकी नाटक-संग्रह प्रकाशित किये हैं।"

यह सर्व विश्रुत है कि पारसी थियेट्रिकल कम्पनियो को छोडकर (जो कि वस्तुतः उर्दू का मंच थी) हिन्दी का अपना रंगमंच नहीं। अतः हिन्दी मे अभिनेय नाटक कम लिखे गए है और पाठ्य ही अधिक। ऐसी अवस्था

में जब राष्ट्र-भाषा में अन्य प्रान्तीय भाषाओं की विशेषताएँ, अनुवाद द्वारा और आदान-प्रदान से हम ग्रहण करने जा रहे हैं, मराठी स्टेज की यह कहानी और मराठी-नाटकों का यह इतिहास उपयोगी साबित होगा।

पाँच वर्ष पूर्व प्रयाग मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के शताब्दी-महोत्सव के अवसर पर जब हिन्दी के केन्द्र में ही एक भी नाटक न खेला गया, तब 'परिमल' गोष्ठी में सर्वश्री महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, बच्चन, रामसिंह तोमर, गगाप्रसाद पाडेय आदि के सम्मुख मैंने जो बात कही थी, वही दुहराना चाहता हूँ। अपने विद्यार्थी-जीवन में और अध्यापक-जीवन में मैं अनेक मराठी तथा हिन्दी-नाटकों के रगमच पर पर्दे और चेहरे रँगने (ग्रीन रूम सँभालने) के कार्य से लगाकर नाटक लिख देने तक अनेक प्रकार के उद्योग और व्याप 'उपद्व्याप' मैंने किये है। परन्तु हिन्दी में स्टेज की कमी के कारण स्पष्टत. दो चीजें हैं—एक तो जन नाट्य की उपेक्षा और दूसरे हिन्दी-भाषियों के सामाजिक जीवन में उस सास्कृतिक स्तर के निर्माण की कमी, जिसमें निर्भय भाव से तरुण स्त्री-पुरुष एक साथ मिलकर मच पर आ सकें। विश्वविद्यालयो में कभी-कभी, कहीं-कहीं विद्यार्थी और विद्यार्थिनियाँ एकत्र नाटक खेलती हैं, परन्तु उतने से क्या होता है?

नाटक की समस्या इस प्रकार से एक तिहरी समस्या है। उत्तम नाटक लिखा जाय, यानी उनके लिखने वाले नाटककारों की समस्या, उत्तम निर्देशकों की समस्या और इस प्रकार से धीरे-धीरे जनता की अभिरुचि सुधारने की समस्या। इनमें प्रथम और अन्तिम से भी अधिक दूसरी चीज है, क्योंकि रगमच के अभाव में कुशल 'रेजिसौर' भी कहा से निर्मित होगे? सोवियत् नाट्य-कला-समीक्षक पोपोव ने कहा था—"थियेटर को अपना निर्णायक व्यक्तित्व देने के लिए मच के निर्देशक को उस समष्टि से सीखना और जानना चाहिए जिसमें वह काम करने जा रहा है। समूह के लिए काम करना चाहिए और उसकी अभिरुचि मे विश्वास करना चाहिए। थियेटर पर कोई पूर्व-नियोजित योजना और 'डिक्टेशन' नहीं चल सकता। अच्छे नाट्य-निर्माता को अभिनेता की रचनात्मक प्रतिभा को मुक्त करना और उसका उपयोग करना आना चाहिए। भारतीय रगमंच

और नाटकों का इतिहास इस बात को स्पष्ट करेगा।

सभी कलाओं का जन्म जनता से होता है और उनका अन्त भी जनता के हित में ही होना चाहिए। दक्षिण भारत में नाट्य कला का जन्म इसी प्रकार के लोक-नाट्य और लोक नृत्य में से हुआ। 'नट नृत्तौ', केरल के 'थुल्लल', कर्नाटक के यक्ष-गान, भागवत और तेलगु के 'तोलुबोम्मलाटल' इसी तरह की चीजें थीं। बगाल की जात्रा और आसाम की 'बीहुजाति' गुजरात के कीर्तन और मराठी के ललित भी ऐसी ही सगीत-प्रधान चीजें थीं जैसे उत्तर भारत की रामलीला में होती हैं। महाराष्ट्र में १८४३ से पहले 'कर्नाटकी खेल' हुआ करते थे। कृष्णा जी आबाजी गुरुजी नामक एक नाट्य-समीक्षक ने अपने एक पुराने लेख 'नाटक के स्थित्यन्तर' में कहा है कि—"सूत्रधार पखावज बजाते हुए पद गाने लगता तब पात्र बाहर आते। जैसे सरस्वती एक लडके को मोर बनाकर मच पर आती। मोर बेचारा थकने तक नाचता रहता। सब रस नाचते हुए दिखाए जाते। सीता नाचते-नाचते बेहोश होकर जमीन पर गिरकर विलाप करती कि यह करुण रस होता। वह उठकर खडी भी होतीं तो नाचती ही रहतीं। रावण मन्दोदरी नाचते-नाचते स्टेज पर आते और वैसे ही पर्दे की ओट हो जाते।"

इस अवस्था का परिणत रूप था विष्णुदास भावे का प्रथम मराठी नाटक 'सीता स्वयवर', जो सागली रियासत के राजा के आश्रय में १८४३ ईसवी में खेला गया। इन नृत्य नाट्यों को मृदग के बोल के आधार पर 'तागडथोम' कहा करते थे। इन 'तागडथोम' नाटकों में 'फार्स' भी जोड़े गए और इन नाटकों की प्रारम्भिक अवस्था वाले तमाशों में नाटककार का स्थान गौण था। अधिकतर सस्कृत-नाटकों के अनुवाद ही होते थे। इनमे क्रमकर दूसरी ओर गद्य-नाटक लिखे जाने लगे। उन्हे अंग्रेजी विशेषण उधार लेकर उस वक्त भी मराठी में 'बुकिश' नाटक कहते थे। एक ओर जनता पौराणिक नाटकों का अस्वाभाविक हल्ला-गुल्ला पसन्द नहीं करती थी तो दूसरी ओर गद्य-नाटकों का रूखापन पसन्द नहीं था।

इन दो परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों में से अण्णा किर्लोस्कर (नाटककार-नट और नाट्य-निर्माता) ने संगीत नाटक लिखने आरम्भ किये। वे भारत में 'ऑपेरा' लाना चाहते थे। पारसी थियेट्रिकल कम्पनी की भाँति उन्होंने सब सवाद पद्यमय और संगीतमय रचे। किर्लोस्कर के इस 'इष्ट संचायक' (एकलेक्टिक) नाट्य-रूप से रंगमंच और दर्शक जनता के बीच अन्तर कम हुआ। परन्तु केवल साहित्य का प्रधान गुण रंजकता अधिक काल तक नहीं रह सकता। मराठी नाटक में भी सामाजिक आशय की माँग बढ़ने लगी।

आरंभिक यूनानी नाटकों में अरिस्टोफीनीस के 'मेढक' कामेडी के बाद जैसे-जैसे 'कोरस' का और 'प्रामुख' (प्रोलोग) का उपयोग समाज पर व्यंग करने के लिए किया गया, वैसे-ही-वैसे १८६० तक कई प्रहसन लिखे जाने लगे। उनका सामाजिक व्यंग बहुत स्थूल और भोंडा (रूढ) हुआ करता था। इसी कच्चे गारे में से नाट्य-प्रतिमा का निर्माण किया खाडिलकर-जैसे राष्ट्रीय अभिमान से भरे हुए नाटकाचार्यों ने। १६११ तक 'कांचनगढ की मोहना', 'कीचकवध', 'भाऊबन्दकी' इत्यादि नाटक लिखकर मराठी रंगमंच को खाडिलकर ने 'क्रांतदर्शी' रूप दिया। पौराणिक विषयों में अन्योक्ति और रूपक (एलेगरी) के द्वारा वर्तमान पर व्यंग करने वाले नाटक अधिक दिन न चल सके। दर्शकों की उचित कला की भूख वैसे ही अतृप्त रही।, इस भूख का समाधान किया श्रीपाद कृष्ण कोल्हट-कर के 'मूकनायक' आदि नाटकों ने, और उनकी साहित्यिक परम्परा के शिष्य रामगणेश गडकरी ने अपने अमर पाँच नाटक लिखकर मराठी रंगभूमि को श्री-सम्पन्न बनाया। 'एकच प्याला,' 'भावबंधन', 'पुण्य-प्रभाव', 'वेड्याचा बाजार', 'राजसंन्यास' इन पाँच नाटकों से इतनी बड़ी ख्याति प्राप्त करने वाला यह मराठी का प्रधान नाटककार था। गडकरी के नाटकों में अति नाट्यात्मकता थी। उसका कारण उन पर उर्दू-रंगमंच का प्रभाव था।

आधुनिक काल

इसके बाद मराठी नाटकों का आधुनिक काल आता है। इसके प्रमुख उद्‌गाता हैं भार्गवराम विट्ठल उर्फ मामा वरेरकर, प्रह्लाद केशव अत्रे और मो० ग० रागणेकर। वरेरकर ने सामाजिक समस्याओ को अपने नाटको का प्रधान लक्ष्य बनाया। जब 'नाटिका'-सम्प्रदाय मराठी मे हिन्दी एकाकियों की तरह रूढ हुआ तब वरेरकर उधर मुड़े और उन्होंने 'पापी 'पुण्य', 'सदा बदिवान', 'नामानिराला', 'ससार' आदि नाटिकाएँ लिखीं। मराठी का पहला छोटा नाटक या आधुनिक ढग की एक ही सेट पर खेली जाने वाली नाटिका बाम्बे थियेटर में १ अगस्त १६३० को बालमोहन सगीत-मडली ने खेली। यह पहली नाटिका अनन्त हरिगद्रे कृत 'प्रेम देवता' थी। १६३० से १६३५ के काल खड मे यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ कि वीर वामनराव जोशी, अप्पा टिपणीस, बरवे, मा० कृ० शिंदे, सरपोतदार, ह० वि० देसाई, ना० धो० ताम्हनकर आदि ने तीस-चालीस नाटिकाएँ स्टेज पर बहुत सफलता पूर्वक खेलीं।

इसी समय रागणेकर ने अपने नाट्य-मन्वन्तर की स्थापना की। वस्तुत. इसका आरम्भ शौकिया गायक, अभिनेता, चित्रकारो के एक ग्रुप से हुआ था। इस सस्था ने रागणेकर का 'कुल वधू' नाटक सैकड़ों बार खेला और उसे बहुत ही सफलता मिली। इस नवीन नाट्य-प्रयोग मे महाराष्ट्र की सगीत-नाटक-परम्परा, मा० ना० जोशी, अत्रे आदि का 'विदारक' सामाजिक व्यग और इब्सन आदि के प्रभाव से ली हुई समस्या-प्रधानता और आधुनिकता का सुन्दर सम्मिश्रण था। 'नाट्य-मन्वन्तर' के अनुकरण पर अनेक सस्थाएँ आगे बढीं —नाट्य सगम-कला-विकास, नव-नाट्य-सघ, नाट्य मदिर, लोक-नाट्य-सघ आदि। परन्तु रागणेकर मे जो व्यावसायिक दृष्टि के साथ-साथ उचित मात्रा में आशीर्वाद था, वह अन्य सस्थाओं मे इतने सामजस्य से नहीं मिला। कहीं नाटक अच्छे थे तो कहीं अभिनेता। सबका ऐसा सहकार्य, जैसा रागणेकर को मिला था, अन्यत्र दुर्लभ था।

आधुनिक मराठी नाटकों की विशेषताएँ हैं : शास्त्रीय संगीत और भाव-गीत का समुचित प्रयोग, नवीन प्रकार के रंगमंच का निर्माण, स्वाभाविक समस्या-प्रधान छोटे-छोटे साहित्य गुणयुक्त नाटक, सरल सहज सम्भाषण, स्त्रियों का अभिनय स्त्रियाँ करती हैं, अतिनाट्यात्मकता से बचने की प्रवृत्ति, हास्य और व्यंग्य का प्रचुर प्रयोग, घरेलूपन और नाटककार, नट तथा निर्देशक का सुखद सहकार्य। हिन्दी में राष्ट्रीय रंगमंच-निर्माण की चर्चा के समय ये बातें अच्छे पथ-प्रदर्शक की तरह काम आयेंगी, ऐसी आशा है

मराठी के प्रमुख हास्य-शिल्पी

मराठी साहित्य में व्यंग्य और विनोद की बड़ी समृद्ध परम्परा रही है। वैसे तो हास्य-रस के उदाहरण 'महानुभाव-साहित्य' में, एकनाथ के 'भारूडों' में (जो कि कबीर की 'उलटबासियों' की तरह से कुछ अन्योक्तियों-अध्यवसित रूपकों की कथा है), रामदास के 'दासबोध' में और तुकाराम के अभगों में भी मिल जायेंगे, परन्तु हास्य की आधुनिक परम्परा वस्तुतः गद्य-लेखन के विकास एव पत्र-पत्रिकाओं के बढते हुए प्रचार के साथ मिलती है। यहाँ मैं केवल उन्हीं ग्रन्थकारों और पुस्तकों का उल्लेख कर रहा हूँ, जिन्हें मैंने पढा है और जिनका प्रभाव मुझ पर बहुत गहरा है।

श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर

आधुनिक गद्य के प्रधान शिल्पियों में श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर का नाम सबसे पहले सामने आता है। उन्होंने कविता, उपन्यास, नाटक, अलोचना सब-कुछ लिखा, परन्तु उनकी सबसे बड़ी देन है, 'सुदाम्याचे पोहे' (सुदामा के चाँउर), जिसमे उनकी 'साहित्य बत्तीसी' भी शामिल है। ये हास्य-रस-प्रधान निबन्ध हैं। काशी-विश्वविद्यालय में जर्मन के प्रोफेसर महादेव सीताराम करमरकर ने इस ग्रन्थ के कई निबन्धों का सफल अनुवाद किया है और वह यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओ मे छपे भी हैं। 'चोरों का सम्मेलन',

'साहित्य सम्मेलन की पूर्व तैयारी', 'चित्रकार', 'संगीत कला' आदि अनेक निबन्ध अविस्मरणीय हैं। उनके विनोद का एक नमूना मैं नीचे दे रहा हूँ : सुदामा के चावल' से—

इस चावी-रूपी स्त्री का ताला-रूपी पति पर इतना जोर होता है कि उसका विरह होते ही ताला अपने मालिक की भी नहीं मानता। ताले भी इस विवाह के मामले में आर्य-भूमि के योग्य ही हैं, क्योंकि प्रत्येक ताले की दो-दो चावियाँ होती हैं और दोनों खो जाने पर तीसरी स्त्री करने की उन्हें धर्म की ओर से अनुमति है। मान लीजिए, चोर ताले के साथ-साथ सन्दूक भी उठाकर ले भागें तो अपना स्थान न छोड़कर जैसा भी संकट आए, उसकी ओर 'पीठ तब तैसी दीजै' नीति का वे अवलम्बन करते हैं। ताले-जैसे दृढ़-निश्चय वाले प्रखर व्यक्ति को भी स्त्री के कारण (चावी के कारण) स्थान-भ्रष्ट होने का मौका कभी-कभी मिल ही जाता है।

'भाषा-विज्ञान मे मेरे शोध' से—

प्राणियों का उद्भव वनस्पतियों से हुआ। देखिए 'अश्वत्थ' पीपल में 'अश्व' है ही और अश्व मे भी 'श्व' यानी कुत्ता है। यानी दुनिया की शुरूआत में कुत्ता और घोड़ा ये दो ही जानवर थे।

मनुष्य बन्दर से बना यह भी भाषा-विज्ञान से सिद्ध होता है, क्योंकि 'वानर' में 'नर' है ही।

अवयववाचक शब्दों से समाज-विज्ञान का पता चलता है, जैसे अधर—अ—धर—जिसे पकड़ नहीं सकते। 'मस्तक' मस्त से बना है। प्राचीन काल में सोमरस वगैरह पीकर सिर हमेशा चढ़ा रहता था। ओष्ठ—ओ—स्थ—जहाँ से ओ का उच्चारण किया जाय।

राम गणेश गडकरी

कोल्हटकर के शिष्य राम गणेश गडकरी, जो नाटककार के नाते भले ही अधिक प्रसिद्ध हुए, 'गोविन्दाग्रज' नाम से कविता लिखते थे और

'बालकराम' नाम से हास्य के निबन्ध। 'रिकामपणाची कामगिरि' (खाली समय का काम) उनका सुप्रसिद्ध हास्य-निबन्ध-संग्रह है। उसमें 'कवींचा कारखाना' (कवियों का कारखाना) और 'ठकीचे लग्न' (ठकी नामक लड़की का विवाह)–जिस पर आगे चलकर फिल्म भी बना—उनके बहुत ही प्रसिद्ध निबन्ध हैं। कोल्हटकर में जो नर्म-मधुर परिहास होता था, जो सिर्फ गुद-गुदा-भर दे मगर जो आपसे अट्टहास लेने पर न तुले, वह गडकरी में आकर वर्णाढ्य या भड़कीला हो गया है। गडकरी गुदगुदी करने के बजाय करारी चिकोटियाँ काटने लग जाते हैं। गडकरी का हास्य कोल्हटकरी-सम्प्रदाय में अधिक शब्दनिष्ठ है, परन्तु वह हास्य की अपेक्षा व्यंग की की ओर अधिक झुके हैं।

उनके हास्य का नमूना आपको उनके एक नाटक 'पुण्य प्रभाव' के निम्न उद्धरण से मिल सकता है :

[अंक २ दृश्य ३। किंकिणी के दो प्रेमी हैं—नूपुर कवि और कंकण सिपाही। सिपाही ने प्रेम-याचना के भाषण रटे हैं, जो वह ऐन समय पर भूल गया है।]

कंकण—किंकिणी, सुनो हे प्राणेश्वरी! तुम्हारे रूप का वर्णन कौन कर सकता है। हजार जिह्वाओं का ब्रह्मदेव, चार मुखों का शेष (जरा याद करके) और एक कौन—ये सब थक जायँगे!

नूपुर—अच्छा, सिरौरी खोलनी शुरू की!

कंकण—हे सुन्दरी, तेरे नख भ्रमर के समान हैं!

किंकिणी—क्या मेरे नख काले हैं?

नूपुर—वाह, पद-कमलों के आस-पास भ्रमरों की भीड़ होती ही है।

कंकण—तुम्हारे चरण प्रवाल के समान, ऊरु कमल की भाँति···

नूपुर—ये ऊरु क्या हैं?

कंकण—ऊरु का मतलब डर! डर का स्त्री लिंग है वह। बीच में बड़-बड़ मत कर। तुम्हारी गति कदली-स्तम्भ की तरह, कमर

हाथी की, छाती सिंह की भाँति सुहाती है!

नूपुर—आज सुन्दरी को तुम शृंगार के बजाय वीर-रस में डुबो दे रहे हो!

किंकिणी—तुम उन्हें बीच में रोको मत!

कंकण—तुम्हारे हाथ घट की भाँति, कंठ कमल-नाल-जैसा, आवाज शंख की तरह और ओठों की शोभा कोकिला की तरह है। दन्त धनुष की तरह, गाल कुन्द-कली की भाँति, कपाल हिरन की भाँति है!

नूपुर—ठीक है चारुगात्री! तेरे ललित-ललित मधुर-मधुर रूप-सौन्दर्य से इस दासानुदास पर मृदु-मृदुल-हृदयांदोलन होकर कोमल-रस-लीला-विलास से जगदरविंद-सुगंध-मकरन्द-रस-निमग्न हो गया है! हे कम्बुकंठी, ललनाललामभूत-ललितलतिकावलि-मृदुलदलदलित हृदये, मुझे प्रेम-शब्द से ब्रह्माण्ड याद आता है, ब्रह्माण्ड प्रेमसोल्लसित-हसितवृत्ति-शून्य हो जाने से, प्रेम का ब्रह्मांड विलसित होकर ब्रह्मांड का प्रेम हो जाता है।

किंकिणी—ब्रह्म-घोटाला यही है न!

कंकण—मैं तो एक अक्षर भी नहीं समझ सकता!

किंकिणी—मैं भी कुछ नहीं समझ पाई!

नूपुर—हे चन्द्रिकाधवलतनु-लतानुलतिके! यह है कविता। काव्य का अर्थ समझना जरूरी नहीं।

केलकर, जोशी और अत्रे

गडकरी के बाद हास्य के प्रसिद्ध लेखकों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तब वैसे तो नरसिंह चिंतामण केलकर की एक कविता में नर्म विनोद मिलता है, फिर भी वह हास्य के निर्माता की अपेक्षा उस पर भाष्य करने-वाले अधिक थे। उनका बहुत बडा ग्रंथ 'हास्य-विनोद-मीमांसा', जिसमें उनका पुराना ग्रन्थ 'सुभाषित आणि विनोद' शामिल है, एक अजोड पुस्तक है, क्योंकि उसमें संस्कृत, अंग्रेजी और मराठी हास्य के उदाहरणों

के अतिरिक्त 'हम हँसते क्यों हैं ?' इस विषय की विशद रस-समीक्षा भी है।

परन्तु नाटकों में माधवराव जोशी ने 'विनोद', 'म्युनिसिपैलटी' आदि लिखकर जैसे यथार्थवादी (और कभी-कभी ग्राम्यता की सीमा तक पहुँचनेवाले) उपरोध (यह मराठी में 'व्यंग्य' के लिए प्रयुक्त शब्द है) की परम्परा प्रचलित की, वह बेजोड़ है। म्युनिसिपैलिटी में चुनाव का जैसा नज़ारा प्रस्तुत है, वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। अत्रे ने बाद में जो 'वन्दे मातरम्' लिखा, उसमें और 'मी उभा आहे' में बहुत-कुछ चुनाव-राजनीति है, पर जितनी विदारक, समाज-सुधार के आदर्श से प्रेरित और पैनी सामाजिक व्यंग्य-गर्भित शैली माधवराव के 'म्युनिसिपैलिटी' में मिलती है, अत्रे के उस नाटक में नहीं है। यहाँ मैं माधवराव जोशी और प्र० के० अत्रे की रचनाओं में से कुछ उदाहरण देता हूँ :

माधवराव जोशी के आनन्द नाटक में दो डॉक्टरों का ढींग-भरा सम्भाषण—

होमियोपैथ-डॉक्टर—मेरे सामने सर्जरी की अकड़ मत दिखाओ। परसों एक कुत्ते की पूँछ पर से गाड़ी का पहिया निकल गया और वह टूट गई। मैंने एकदम होमियोपैथिक गोलियाँ कुत्ते को दीं। एकदम कुत्ते की पूँछ फिर से लम्बी हो गई।

डॉक्टर—बड़ी अकड़ दिखाता है होमियोपैथी की। रास्ते पर पड़ा हुआ पूँछ का टुकड़ा मैं दवाखाने में ले आया और जब उसका ऑपरेशन किया तब उस पूँछ में से समूचा कुत्ता उग आया।

जोशीजी के 'स्थानिक स्वराज्य या म्युनिसिपैलिटी' नाटक से—

पांडुरंग—क्या हिम्मत है कानून की कि वह अमीर की तरफ जरा भी आँख टेढ़ी करके देखे ! गरीब कौड़ियाँ लेकर या पैसे लेकर जुआ खेले तो उसे सजा होती है, पर घोड़ों की रेसों के लिए मोटरों का कुम्भ-मेला जमा होता है। गरीब शृंगार-भरा उपन्यास लिखे तो अश्लीलता के कानून मे पकड़ा जाता है, परन्तु नंगे नाच के यूरोपियन

अत्रे ने 'झेंडूची फुलें' नामक पैरोडी-सग्रह में विडम्बा-कविता का नया प्रवाह शुरू किया। अत्रे के साथ-ही-साथ चिन्तामरण विनायक जोशी ने महाराष्ट्र के घर घर में अपना अमर पात्र 'चिमरणराव' निर्माण करके हास्य-रस की निर्मिति की। चिमरण-राव 'चचा-छक्कन' या 'जीव्स' की तरह एक अमर पात्र है। वैसा ही एक कमाल का हँसानेवाला पात्र ना-धों-ताम्हणकर ने 'दाजी' नाम से निर्माण किया। विजयानन्द या महाकवि चच्चा या शिवशम्भु शर्मा में अतिशयोक्ति है। परन्तु ये पात्र अधिक सजीव हैं—मध्यवर्ग की मुसीबतें इनमें अच्छी तरह से चित्रित हैं। चि०वि० जोशी ने 'लका-वैभव' नाम से एक हास्य-रस-पूर्ण पुस्तक लिखी है, जिसमें कल्पना की गई है कि रामायण-काल में यदि अखबार होते और रिपोर्टर होते तो राम-रावण-युद्ध का कैसा वर्णन होता। 'लका-वैभव' और 'अयोध्या समाचार' नामक पत्रों की काल्पनिक कतरनों के आधार पर यह तैयार किया गया है। 'लका-वैभव' का रेडियो-रूपान्तर मैंने इलाहाबाद से प्रसारित किया था। चि० वि० जोशी की हास्य-पुस्तकें हिन्दी में अनूदित होनी चाहिए।

अनन्त काणेकर, य० गो० जोशी, वि० स० खाँडेकर, वि० मा० दि० पटवर्धन, कैप्टन लिमये आदि की कहानियों और लघु निबन्धों में हास्य का बहुत पुट है। इसके बाद के लेखकों मे शामराव ओक, श० कृ० देवभक्त, पु० ल० देशपाण्डे, दत्तू बाँदेकर, भा० रा० भागवत, राम डोके प्रभृति कई लेखकों ने बहुत उत्तम प्रकार की हास्य-कथाएँ, हास्य-निबन्ध और प्रहसन मराठी को दिए हैं। दत्तू बाँदेकर की 'दादाओं की कान्फरेन्स' गत महायुद्ध-काल में 'अभ्युदय' साप्ताहिक मे मैंने अनुवाद करके छपाई थी। पु० ल० देशपाण्डे की चीजें बहुत शक्तिशाली होती हैं। विशेषतः 'अभिरुचि' में छपे उनके निबन्ध-जैसे 'लोक-माता', 'विसगत सगीत', 'सगीत-चिवडामणि' आदि बहुत प्रसिद्ध है।

मराठी परिहास-निबन्धो का एक बढ़िया चुना हुआ सकलन हिन्दी में अनूदित करके प्रकाशित करना चाहिए। हिन्दी म उच्चकोटि के हास्य की बडी कमी है। इस कमी की पूर्ति अन्य भाषाओं के उत्तम हास्य-लेखकों

के अनुवाद से की जाय : जैसे-बंगला के परशुराम या परिमल गोस्वामी, गुजराती के ज्योतीन्द्र दवे या सुन्दर देसाई और मराठी के शामराव ओक और पु० ल० देशपाण्डे आदि। मगर यह सुबुद्धि हिन्दी के प्रकाशकों को कब आयगी ?

: १० :

कोश-साहित्य

यह अध्याय लिखते समय मैं 'महाराष्ट्र-परिचय' नामक महत्त्वपूर्ण संदर्भ-ग्रन्थ का सहारा ले रहा हूँ। वैसे तो मराठी में सबसे पहला कोश सन् १८१० ई० में ही डॉ० कॅरे ने बनाया था। परन्तु उसका उतना प्रचार-प्रसार तब नहीं हुआ। कर्नल केनेडी साहब का कोश भी (सन् १८२४ ई०) छोटा और अनेक दृष्टियों से अधूरा था। बम्बई में शिक्षा-प्रसार-समिति की स्थापना के बाद १८२६ ई० में यह काम उसने अपने ऊपर लिया। बालशास्त्री घगवे, गगाधर शास्त्री फडके, सखाराम जोशी, दाणी शास्त्री शुक्ल और परशुराम पत गोडबोले इन पाँच विद्वानों ने मिलकर महाराष्ट्र भाषा का सर्वांग सुन्दर कोश बनाया। यह 'शास्त्री-कोश' कहलाता है। सन् १८२६ ई० में वह प्रकाशित हुआ और १८३१ ई० में मोल्सवर्थ ने अपना 'मराठी-अगरेजी-कोश' छपवाया। पर इस आरम्भिक जानकारी के बदले विषयवार कोशो का विस्तार से विवेचन करना उपयुक्त होगा। हिन्दी मे परिभाषा-कार्य वर्षों से चल रहा है, पर यह जानकर दुःख होता है कि उसमें मराठी में सैकडो वर्षों से किये गए इस बड़े कार्य की पूरी उपेक्षा है—एक भी महाराष्ट्र का कोशकार उससे सम्बद्ध नही हो पाया है, हिन्दी के भी पूरे कहाँ हुए हैं! परन्तु जहाँ वृत्ति ही सुलभता और हिन्दी के किसी भी शोर करने वाले नाम को ले लेने की है, विशेषज्ञ बेचारे एकान्त में खिलकर झरते रहेंगे!

भारत की सब भाषाओं के आद्य कोश मिशनरियों के बनाये हुए हैं। मराठी भी अपवाद नहीं है। रघुनाथ भास्कर गोडबोले ने 'मराठी भाषा का नवीन कोश', 'हंस कोश', 'भारतवर्षीय प्राचीन तथा अर्वाचीन कोश', 'मराठी-अंगरेज़ी कोश' आदि कोश रचे। लोकमान्य तिलक भी एक बृहद् मराठी कोश बनाना चाहते थे। उन्हींकी प्रेरणा से उनके सहकारी माधवराव नामजोशी ने 'बृहन्मराठी कोश' शुरू किया। १६२२ ई० में वासुदेव गोविन्द आपटे ने 'शब्द रत्नाकर' प्रकाशित किया। इसकी सहायता से सन्त कवि और प्राचीन कवियों का अध्ययन भली भाँति हो सकता था। इसका एक छोटा संस्करण 'शब्द रत्नाकर' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसका १६३२ ई० में स्वर्गीय लेलेशास्त्री ने दूसरा संस्करण प्रकाशित किया, जिसमें से व-हाडी-नागपुरी शब्द कम कर दिये गए थे। इधर गोपीनाथ तलवलकर ने उसका सुधरा हुआ संस्करण प्रकाशित किया है। १६३० ई० में चित्रशाला प्रेस पूना से विद्याधर वामन भिडे ने 'सरस्वती कोश' प्रकाशित किया। इसमें प्राचीन-नवीन गद्य-पद्य के अवतरण, प्रादेशिक बोलियों और उपभाषाओं के शब्द और मुहावरे, व्युत्पत्ति-चिकित्सा, सब अर्थच्छटाएँ इत्यादि थीं। १६२७ ई० में महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन ने 'मराठी भाषा का सर्वांगीण बृहत्कोश' बनाने का प्रस्ताव पास किया। १६२८ ई० के अप्रैल में दाते-कर्वे आदि ज्ञान-कोश का कार्य पूरा करके इस काम में जुट गए। 'महाराष्ट्र शब्द कोश' के सात खण्ड १६३८ ई० में प्रकाशित हुए और आठवीं पूरणिका बारह बरस बाद प्रकाशित हुई। इस दस वर्ष के महान् कोश-कार्य में एक हजार से ऊपर ग्रन्थों से अवतरण लिये गए थे। इस कार्य से पहले के सब कोश इसमें उतार लिये गए थे। इस कोश में ५० देशों की २००० संज्ञाएं संग्रहीत हैं। आंचलिक उपभाषाओं और बोलियों के ५०० शब्द हैं। इस कोश के शब्द-संकलन और निर्माण में कोई सरकारी सहायता नहीं थी, परन्तु आयोजन पक्का और सूत्रबद्ध था। निम्न २० विभागों में शब्द छाँटे गए थे—

प्राचीन	आधुनिक
१. शिलालेख-ताम्रपट	११ आधुनिक काव्य
२ महानुभावी वाङ्मय	१२ नाट्य-नृत्य
३. मुकुन्दराज-ज्ञानेश्वर	१३ साहित्य (अलकार)
४ एकनाथ-मुक्तेश्वर	१४. शास्त्रीय (वैज्ञानिक)
५ रामदासी	१५. आलोचनात्मक
५ अभंग और स्फुट काव्य	१६. निबन्धात्मक
७. आर्या-गीति	१७ समाचारपत्रीय
८ पुराना शाहीरी काव्य	१८ प्रान्तिक-भाषिक
९ ऐतिहासिक गद्य	१९ दस्तकारी सम्बन्धी
१० निबन्धकालीन गद्य	२० स्त्रियों का साहित्य

मराठी में अगरेजी, फारसी, बगाली, हिन्दी से अधिक कोश हैं। उनमें प्रो० नी० बा० रानडे ने अगरेजी-मराठी कोश बनाने के लिए बडी मिहनत की। इनमें पारिभाषिक, दस्तकारी सम्बन्धी और साहित्यिक शब्दों का संग्रह करके उनका अर्थ पुराने-नये मराठी प्रतिशब्दों में दिया है। अब यह 'रानडे कोश' दुर्लभ है, परन्तु प्रिं०वा० शि० आपटे के सस्कृत-अगरेजी कोश की भाँति इसमें भी कोशकार की गहरी विद्वत्ता और परिश्रम दिखाई देता है।

ज्ञानेश्वर के बाद से मराठी में फारसी के शब्द आने लगे और उनका अतिरेक पेशवाओं के समय हुआ। पुराने कागज-पत्रों में करीब पचास प्रतिशत फारसी शब्द है और ज्ञानेश्वरी के शब्दों की तरह वे दुर्बोध हैं। प्रो० माधवराव पटवर्धन ने १९२५ ई० में यह कोश अकेले बनाया और भारत इतिहास-सशोधक मण्डल से प्रकाशित कराया। परन्तु इसका सुधरा हुआ नया सस्करण नहीं निकल पाया।

वासुदेवराव आपटे का 'बगाली-मराठी-कोश' बहुत छोटा-सा है। यह भी सन् १९२५ ई० में प्रकाशित हुआ। उससे पहले बगाली-उपन्यासों का मराटी में प्रकाशन बडे उत्साह से हुआ था। 'मासिक मनोरजन'-जैसी

पत्रिकाओं ने यह कार्य बड़े परिमाण पर किया था। मिरज के कातगडे ने 'हिन्दी-मराठी-कोश' १६२८ ई० में प्रकाशित किया। पर उसके बाद राष्ट्रभाषा के कई छोटे-बड़े कोश प्रकाशित होने लगे हैं, जिनमें स्वर्गीय ग० र० वैशंपायन के कोश बहुत प्रसिद्ध हैं!

कोंकणी भाषा गोश्रा के राज्य-व्यवहार की भाषा है। सूर्याजी आनन्द-राव राजाध्यक्ष दलवी ने सन् १८७६ ई० में 'महाराष्ट्र-पोर्तुगीज कोश' का प्रथम भाग प्रकाशित कराया। १५ बरस में यह काम पूरा हुआ। पहला भाग 'थ' अक्षर तक है। परन्तु उससे सम्पादक की योग्यता और दक्षता अच्छी व्यक्त होती है। कोंकणी के कई कोश पुर्तगाली में हैं, वैसे ही कोंकणी के शब्दार्थ देने वाले अंगरेजी और कन्नड में भी हैं, जो मिशनरियों के बनाये हुए हैं।

पहला 'संस्कृत-मराठी कोश' स्वर्गीय ज० वि० ओक ने 'गीर्वाण कोश' नाम से १६१५ ई० में प्रकाशित किया। प्रि० वा० शि० आपटे का 'संस्कृत अंगरेजी कोश' अब दुर्लभ है, इसलिए प्रसाद प्रकाशन, पूना-२ से यह कोश फिर छपने जा रहा है।

'विग्रह कोश' के बाद धूलिया के राजवाडे सशोधन मण्डल की ओर से स्वर्गीय वि० का० राजवाडे ने अपने 'धातुकोश' में १५,००० से ऊपर मराठी धातु दी हैं। आठल्ये-आगाशे का 'शब्दसिद्धि निबन्ध' (१८७५) और प्र० रा० पण्डित की 'अपभ्रष्ट चन्द्रिका' (१८७८) और गो० शं० बापट का 'व्युत्पत्ति प्रदीप' यही प्रधान पुस्तकें थीं। परन्तु इन सबसे बड़ा और बहुत ही उल्लेखनीय कार्य १६४६ ई० में प्रकाशित प्रो० कृ० पा० कुलकर्णी का बहुत बड़ा 'मराठी व्युत्पत्ति-कोश' है। हिन्दी में परिभाषा का कार्य करने वाले कई तथाकथित विद्वानों को नौ वर्ष पूर्व रचे और छपे इस महत्त्वपूर्ण संदर्भ-ग्रन्थ का पता ही नहीं है, यह जानकर इन पंक्तियों के लेखक को बड़ा आश्चर्य हुआ।

मराठी में पहले स्व० र० भा० गोडबोले ने प्राचीन तथा अर्वाचीन [illegible] है। [illegible]शास्त्री ने १६३२

में प्राचीन चरित्रकोश प्रकाशित किया। कॅसेल की विश्व-विश्रुत क्लासिकल डिक्शनरी की भाँति यह ग्रन्थ वेद-पुराणादि के अध्ययन के लिए बहुत ही उपयोगी सदर्भ-पुस्तक है। स्वर्गीय गणेशप्रसाद द्विवेदी हिन्दुस्तानी एकेडेमी से इसका सार या अनुवाद प्रकाशित कराने वाले थे, पर पता नहीं क्या हुआ। चित्रावशास्त्री के 'मध्य युगीन चरित्रकोश' (ईसापूर्व ५० से सन् १८१८ ई० तक) और 'अर्वाचीन चरित्र कोश' (१६४५ ई० आखिर तक) यही उसके दो अगले खण्ड और भी उपयोगी हैं। इस कोश में ऐतिहासिक नामों के साथ-साथ सक्षिप्त चरित और जीवनियाँ भी दी गई हैं। ग० दे० खानोलकर ने 'अर्वाचीन वाङ्मय सेवक' नामक ग्रन्थ में आधुनिक लेखकों की जीवनियाँ, परिचय तथा उन पर आलोचनात्मक लेख तीन खण्डों में दिये हैं—'ब' तक वे आये हैं।

ज्ञान कोश की चर्चा पहले डॉ० केतकर के सदर्भ में विस्तार से आ चुकी है। २३ खण्डों में ऐसा काम इतने कम आदमियों ने मिलकर शायद ही किसी भाषा में पूरा किया हो। ज्ञानकोश के बाद 'व्यावहारिक ज्ञानकोश' नाम से सचित्र पाँच खण्डों में दैनिक और नैमित्तिक व्यवहार की वस्तुओं का परिचय दिया गया है। हिन्दी में 'ज्ञान सागर' का पहला खण्ड बच्चों के लिए १६५५ में निकला। 'मराठी व्यावहारिक ज्ञानकोश' १५ वर्ष पहले छप चुका था। मराठी भाषा की प्रकाशित पुस्तकों की बृहत् सूची 'महाराष्ट्र वाङ्मय सूची' नाम से १६१६ में प्रकाशित हुई। श्री श० ग० दाते ने अकेले, १५०० मुद्रित पृष्ठों की 'मराठी ग्रन्थ-सूची' (१८००-१६३७ ई०) बनाई, जिसमें मुद्रण की कला के आने के बाद जितनी भी छपी हुई मराठी पुस्तकें हैं, उन दो हजार किताबों की सूची है। इसमें उन्होंने नई दशांश-वर्गीकरण पद्धति भी दी है। स्वर्गीय गो० का० चांदोरकर की 'सन्तकवि-काव्य सूची' अनुसधान करने वालों के बड़े काम की है। इसी में १८६६ ई० में प्रकाशित करकरे वैद्य का 'स्थल-नाम कोश' भी आ गया है। इसके अतिरिक्त १८६६ ई० में कॉटन मॅनवरिंग ने मराठी की कहावतों और मुहावरों का एक कोश बनाया।

वा० गो० आपटे और वि० वा० भिडे की 'मराठी वाक्प्रचार आणि म्हणी' छोटी किताब भी उसी आधार पर है। महाराष्ट्र शब्द कोश मण्डल ने दो खण्डो में एक बडा 'महाराष्ट्र वाक्सप्रदाय कोश' प्रकाशित किया, जिसमे चालीस हजार से ऊपर कहावतें, सार्थ और सोदाहरण सग्रहीत हैं। इन्दौर के स्वर्गीय कालेले ने एक 'राजकोश' नाम से राजेट के थेसारस के रूप में पर्यायवाची कोश बनाना शुरू किया था। पर दो खण्ड प्रकाशित हुए और वह कार्य बन्द हो गया।

शास्त्रीय परिभाषा कोश के क्षेत्र में डॉ० गज्जार के 'बहु भाषा कोश' के बाद बडौदा के 'श्री सयाजी शासन कल्पतरु' का उल्लेख हो चुका है। उसमें पाँच भाषाओं के अलावा उर्दू, फारसी पर्यायवाची शब्द भी हैं। 'शास्त्रीय परिभाषा कोश' दाते-कर्वे का एक बहुत बडा कार्य है। यह १६४८ ई० मे प्रकाशित हुआ। बडौदा के सरदार ह० नि० मजूमदार ने दस खण्डों में 'व्यायाम ज्ञान कोश' प्रकाशित कराया है। छह खण्डों में १२००० लेख और ७०० से ऊपर चित्रों का एक 'सुलभ विश्व कोश' मराठी में छप चुका है। तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी का धर्म-कोश सस्कृत में है।

महाराष्ट्र की इस महनीय कोश कार्य-परम्परा का कोई लाभ हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे अब तक नहीं लिया गया, यह इसी बात का द्योतक है कि हिन्दी मे वैज्ञानिक चिन्तन और योजनाबद्ध व्यवस्थित 'टीम-वर्क' (सहकार्य) का अखिल भारतीय पाये पर अभी काम शुरू नहीं हुआ है। यह ज्ञान अभी विश्वविद्यालयों की या सरकारी कुर्सियों तक सीमित है, और वे कुर्सियाँ अधिकतर पाठ्य-पुस्तकों मे उलझी हुई है। पर यह स्थिति राष्ट्रभाषा मे अधिक समय तक टिकी नहीं रह सकती।

: ११ :

हिन्दी और मराठी

दो भाषाओं में आदान-प्रदान तीन प्रकार से हो सकता है। दोनों भाषा-भाषी सामाजिक जीवन में और कार्य-क्षेत्र में परस्पर सम्पर्क में आने से एक-दूसरे की भाषाओं से शब्दों, मुहावरों, वाक्-प्रचारों का अनजाने विनिमय करते हैं और एक-दूसरे की संस्कृति से प्रभावित होते हैं। दूसरे, एक भाषा से दूसरी भाषा में पुस्तकों का अथवा स्फुट रचनाओं का अनुवाद होता है। तीसरे, एक भाषा-भाषी दूसरी भाषा में स्वतन्त्र मौलिक रचना करते हैं। हिन्दी और मराठी साहित्यों के परस्पर-प्रभाव तथा परस्पर ऋण का विचार करते समय कुछ परिचयात्मक बातें मराठी साहित्य के इतिहास और विकास के विषय में जाननी आवश्यक हैं।

हिन्दी और मराठी भाषा के परस्पर सम्बन्ध के लिए दो-तीन बातें बहुत सहायक हैं। एक तो दोनों भाषाओं की लिपि एक-सी है, अ, ल, झ, क्ष, ण की लिखावट का अन्तर भी निर्णय सागर से विजापुरे टाइप तक मराठी मुद्रण-सुलभता ने पाट दिया है, और मराठी में एक-आध अक्षर 'ळ' का अधिक होना अथवा च, झ की उच्चारण-भिन्नता कोई बड़ी बाधा नहीं। इन गौण अक्षर-भेदों को छोड़ भी दें तो दूसरा बड़ा लाभ यह है कि दोनों भाषाओं में संस्कृत के तत्सम शब्द प्रायः चालीस प्रतिशत समान हैं। दोनों भाषाएँ प्राकृत से निकली हैं, यद्यपि महाराष्ट्री और शौरसेनी

प्राकृत में व्याकरणगत कई भिन्नताएँ हैं, फिर भी 'अईल, गईल. अइली, गइली'–जैसा भोजपुरी-मैथिली प्रयोग मराठी में भी मिलता है, और पहाडी बोली तक में मराठी के कई शब्द वैसे ही मिलते हैं, जैसे उडिया में भी। दोनों भाषाओं का इतिहास या कहें उत्तर भारत की चारों प्रमुख भाषाओं अर्थात् बंगला, हिन्दी, गुजराती और मराठी के साहित्य का इतिहास एक ही-सी रेखा में विकसित हुआ है। आरम्भ में वही सिद्ध और निर्गुण सन्त, फिर वैष्णव-भक्ति-धारा, राम-कृष्ण-चरित पर आश्रित काव्य, फिर एक युग उत्तान शृङ्गार अथवा उग्र वीर-रस से भरी लोक-गीत-गाथाओं के रीतिबद्ध काव्य का, फिर अंग्रेजों के आगमन के बाद एक नव-जागरण का प्रस्फुटन। आधुनिक काल में भी वही प्रारम्भिक विदेशी प्रभाव के प्रति शंकित-चित्त अस्थिरता, फिर घोर अनुकरण, बाद में गान्धी-प्रेरित राष्ट्रीयता तथा अन्त में मार्क्स-फ्रायड के व्यापक प्रभाव की छाया, पुरानी लीक छोडकर चलने की छटपटाहट, सभी साहित्यों में एक ही-सी वृत्ति लक्षित होती है, एक-दो सदी का अन्तर इधर या उधर छोड दें—उतना प्रत्येक प्रान्त की सामाजिक-सांस्कृतिक जागृति की गति का भेद-मात्र है।

मराठी के आरम्भिक पद्यप्राय गद्य का एक अंश मैं उद्धृत करता हूँ। भाषा इतनी संस्कृतमयी है कि हिन्दी-भाषी भी उसे सहज में समझ लेगा। 'विचारबन्द' नामक ग्रन्थ का एक अंश देखिए :

'अनन्ते ब्रह्माडे अनन्ता देवता अनन्त जीव : गणना विषयो तल्हे ते अनन्त मा तरि ब्रह्माडे गणलीचि ते कैसे · ना ब्रह्मांड-परत्वें चित्ता झाली असे हे काइ पा परि अनन्त ब्रह्मांडीचे जीव गणिले : तेचि केवि : न · जीव परत्वे संलग्न जाली असे म्हणौनि।'

प्राचीन और मध्ययुगीन मराठी साहित्य के काल-खण्ड यों माने जाते हैं—

(१) ज्ञानेश्वर और महानुभावी सन्तों का यादव काल (१२५०-१३५०)

(२) एकनाथ-दासोपन्त का बहमनी काल (१३५०-१६००)

(३) रामदास तुकाराम का शिवकाल (१६००-१७००)

(४) मोरोपन्त-रामजोशी का पेशव काल (१७०० से १८००)

सन् १८१८ मे पेशवाई के पतन के पश्चात् आधुनिक काल का आरम्भ होता है, जिसमे १८५६ ई० मे चिपलूणकर की 'निबन्धमाला' के प्रकाशन के बाद आधुनिक मराठी गद्य का विशेष विकास हुआ।

प्रत्येक काल के एक-एक प्रमुख सन्त कवि को ले तो ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास आदि सबकी मराठी रचनाओ के साथ ही कुछ-कुछ फुटकर पद-रचना हिन्दी मे भी मिलती है। सन् १८६४ मे प्रकाशित 'अनेक कविकृत पदे, कटाव, लावण्या वगैरे पद सग्रह भाग पहिला' नामक ग्रन्थ मे अनेक पुरानी हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर सशोधित और सकलित मराठी के प्राचीन कवियो के कुछ हिन्दी पद भी मिलते हैं। मै उदाहरण रूप मे प्रत्येक पद की कुछ पक्तियॉ ही यहॉ दे रहा हूॅ। ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव का पद १२६० ई० के करीब का

सोही कच्चा वे कच्चा बे। नहीं गुरु का बच्चा॥
दुनिया त्यजकर खाक लगाई जा कर बैठा वन मो।
खेचरि मुद्रा वज्रासन मों ध्यान धरत है मन मो॥
तीरथ करके उम्मर खोई, जागे जुगतियों सारी।

× × ×

हुकुम निवृत्ति का ज्ञानेश्वर कू तीन ऊपर मैना।
सद्गुरु की कृपा भई जब आपी आप पिछाना॥

नामदेव (१२७० से १३५० ई०) के एक पद 'गौलणी टकविल्या' मे कुछ पक्तियॉ हिन्दी मे है

देख कन्हैया। मैं इज्जत की बडी॥
कदम पकडूँगी। मै याकुरो जडी॥
मेरी चुनरी दे। मेरी दे दुलडी॥

और दूसरा एक पद है 'साम्य साम्य रे, भजले रे राजा'। इसमे मराठी प्रभाव स्पष्ट है। जैसे

"जिने जन्म में डारा है तुजकूं । विसर गया उनकु ध्यान ॥
फिर पस्तायेगा ठगा पायेगा । निकस जायेगा अवसान ॥
लख चौयासी का फेरा आवेगा तब चुपी मिलाये बन्दकु ॥
फिरता फिरता जु रमता है बाबा । कौन रखे तेरे तनकु ॥
जिम माय उदरी जन्म लियेगा । तेरे सगत दु:ख उनकु ॥
गरभी की यातना सुन मेरे भाई ! नवमास बन्धन डारे ॥
नहीं जगा हलने चलने कु बाबा ! छोडन कु कोइ नहीं आवे ॥
आग लगी है देखत अन्धे । काय के खाता खोया ॥"

बम्बई में अभी भी साधारण मराठी-भाषी जनता जो हिन्दी बोलती है उनमें यह 'हमकू तुमकू', 'कायके वास्ते' वगैरह सुनाई देंगे ।

एकनाथ (१५३३ से १५९९ ई०) के पद १११ से १२० हिन्दी मे है, जिनकी प्रथम पक्तियाँ हैं :

१. बन्दे हुशार रहना वे ! साहबे राजी रखना वे !
२. गुरुकृपाजन पायो मेरे भाई ! राम बिना कुछ जानत नाहीं ॥
३ राम मीठा लगा । सब सुख हम त्यागा ।
४ गोरस बेचन चल गोरी मथुरा । तुम कंव ठाडे नन्दकिसोरा ।
५. पचतत्व का शोध करीयो । फकीर भयो भाई ॥
६. एकना एक हजार वीरो । इसमें मेरा मौला वसे ॥
७ मलगु फकीर ऐसा मलगु फकीर ॥
८ गाफल हुआ । आगे गफलत का कुवा ॥
९ छोडा तनधन गहे का काम । ज्यामे हरिसे वदलाम ॥
१० भजन बिन धिग चतुराई ग्यान ॥

एकनाथ के शिष्य त्र्यंबक कवि का भी एक हिन्दी-पद मिलता है : जिसने तुजकू पैदा किया कर उसका सन्दोन रे ।

तुकाराम (१६०८-१६५० ई०) की गाथा में 'गौलणी' और 'विराणी' अशों में कुछ हिन्दी पद हैं और फुटकर पदों मे १६ पद हिन्दी में मिलते हैं, जिसकी कुछ प्रथम पक्तियाँ है . आज लङ निरवान, छाड़े धन मन्दिर

वन वसाया, मन्त्र तन्त्र नहीं मानत साखी, हरिसों मिलनदे एकहि वेर, क्या कहू लहें बुझत लोका, कब भरू पाइँ चरन तुम्हारे दासों पाछे दौरे राम, काहे रोवे अगले मरना, काहे भुला धनस्मती घोर, देखत आँखों झूठा कोरा, क्या मोरे लाल कवन चुकी भई।

रामदास (१६०८–१६८१ ई०) के चार-पॉच पद हिन्दी में मिलते हैं, जैसे : चातुर चातुर से भटका, रघुराज के दरबार घमडी गाजंतु हैं, मियाँ मनु-मनु आसा लगावे वो, हात चक्र त्रिसुल विराजे आदि। दक्षिण हैदराबाद के सन्त-कवि केशवस्वामी (१६२८ ई०) के कुछ पद हिन्दी में मिलते हैं, जिसमें उर्दू शब्दों का बाहुल्य है :

१ दुनिया का धन्दा सारा छोड़ दिया भाई।
हखयार से नजर बडे साहबे सो लाई॥
२ काहाँ का पाप काहाँ का पून।
हम तो भये हैं सून में सून॥
३ बच्चा! करले विवेक। सब से सब सों एक॥
बच्चा! बाहरे मत देख। तू ही तू अलेख॥
४ हार मुंडे हुपार मुंडे देख मुंडे दाई!
दोंगी नजर देख बाबा नजीक ईलाही।

मध्ययुग के एक और सन्त सोहिराबा अम्बिये के हिन्दी पदों पर एक स्वतन्त्र लेख मैंने कई वर्ष पूर्व 'आज' में १९४३ में लिखा था।

तात्पर्य, रामेश्वर से बद्री कैलाश तक घूमने वाले रमतेराम जोगी-साधुओं ने हिन्दी के सर्व-व्यापकत्व को कभी से मान लिया था। मराठी सन्तों के हिन्दी-पद मिलते हैं, परन्तु हिन्दी के किसी प्राचीन कवि की कोई पंक्ति मराठी में नहीं मिलती। अपभ्रंश-काल के कवि अब्दुर्रहमान, पुष्पदन्त आदि ने मरहट्ट-देश का और क्वचित् मरहट्ट-वधू का वर्णन भी किया है, जैसे देव के 'जातिविलास' मे, परन्तु किसी हिन्दी कवि ने प्राचीन अथवा अर्वाचीन हिन्दी भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा को भी अपनाया हो ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। 'भारतेन्दु' या 'निराला' के

बंगला पद्य कुछ अपवाद स्वरूप हैं।

आधुनिक काल में यह आदान-प्रदान और बढ़ा। हिन्दी के एक साधारण पाठक से यदि मराठी साहित्य के विषय में पूछा जाय तो वह क्या उत्तर देगा? वह यदि हिन्दी में अनूदित साहित्य के सहारे कुछ कहना चाहे तो प्राचीन साहित्य में 'ज्ञानेश्वरी', मध्ययुगीन साहित्य में 'माझा प्रवास' और 'गीता रहस्य' तथा आधुनिक साहित्य में से कुछ उपन्यासों को छोड और नाम न गिना सकेगा। हरिनारायण आपटे के 'उष काल' और 'गड आला पण सिंह गेला' आदि, बालचन्द नेमचन्द शहा के 'सम्राट् अशोक' और 'छत्रसाल' ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी में अनूदित हुए हैं। वामन मल्हार जोशी के 'रागिनी' और 'आश्रमहारिणी' के अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय ने किये हैं। साने गुरुजी के 'श्यामची आई' का गोपीवल्लभ उपाध्याय ने अनुवाद प्रस्तुत किया है। वि० स० खांडेकर के 'क्रौंचवध' का भावे द्वारा तथा 'सुखाचा शोध' का आनन्दकुमार द्वारा अनुवाद हिन्दी में है। 'उल्का' का अनुवाद मैंने किया है। माडखोलकर के एक-दो उपन्यास गोविन्दराव मराठे ने अनूदित किये हैं। कुछ कहानियाँ यत्र-तत्र अनूदित मिलती हैं; जैसे वामन चोरघडे और मेरा किया हुआ 'गल्प-संसारमाला' का मराठी भाग। परन्तु ये फुटकर एक दर्जन पुस्तकें समूचा मराठी साहित्य नहीं है। और न ही वे प्रातिनिधिक हैं। मराठी नाटकों का क्षेत्र इतना उन्नत होते हुए एक भी पुराने मराठी नाटक का हिन्दी-अनुवाद नहीं मिलता। इधर मामा वरेरकर, मुक्ताबाई दीक्षित और मो० ग० रागणेकर के नाटकों के अनुवाद हिन्दी में हुए हैं। हिन्दी 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक पर नरसिंह चिन्तामणि केलकर की उसी नाम के नाटक की छाया है। यह दशा हिन्दी में मराठी से अनुवाद की है। स्वतन्त्र हिन्दी-भाषी लेखक जो मराठी में लिखते हों, वे तो चिराग लेकर ढूँढने पर भी शायद ही दो-तीन मिलें, यथा दु० आ० तिवारी, गोपालसिंह परदेशी, शान्ता शर्मा आदि कुछ नाम हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने 'राजयोगिनी' नाटक के चतुर्थ गर्भांक में तत्कालीन काशी के

विजयाप्रिय दक्षिणी पंडितों का व्यंग्य-चित्र खींचा है। इस अकेले हिन्दी नाटक में तीन-चार पृष्ठ मराठी भाषा दी गई है। वैसे आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी की गद्य-शैली पर तथा माखनलाल चतुर्वेदी की कविता पर मराठी साहित्य की छाया और प्रभाव है।

इससे उलटे मराठी में हिन्दी-साहित्य से अनुवाद भी मिलते हैं और स्वतन्त्र मौलिक रचनाएँ करने वाले कई मराठी-भाषी लेखक भी हैं, जिनमें से तीन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति भी रह चुके हैं . स्व० माधवराव सप्रे, स्व० सयाजीराव गायकवाड, स्व० बाबूराव विष्णु पराडकर। और वे मराठी-भाषी, जो हिन्दी में लिखते हैं उनमें से कुछ नाम ये हैं · पंडित सातवलेकर, लक्ष्मण नारायण गर्दे, सरदार माधवराव किबे, कमलाबाई किबे, गोपाल दामोदर तामस्कर, डॉक्टर हरि रामचन्द्र दिवेकर, अनन्त सदाशिव अलतेकर, श्रीधर व्यंकटेश पुणतांबेकर, काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, विनोबा भावे, वामन चोरघडे, ग० रा० वैशम्पायन, जोगलेकर, दत्ता वामन पोतदार, रा० र० खाडिलकर, भास्कर रामचन्द्र भालेराव आदि पुरानी पीढी के लेखक हैं। नये लेखकों में श्रीपाद जोशी, अनन्त गोपाल शेवड़े, महादेव सीताराम करमरकर, नारायण शामराव चिताम्बरे, गजानन माधव मुक्तिबोध, मैनावती माटे, तारा पोतदार आदि।

इन लेखकों के अतिरिक्त हिन्दी से मराठी में जो साहित्य अनूदित हुआ है, वह इस प्रकार से है . तुलसी रामायण और कबीर के पद, नानक, मीरा की जीवनी जैसे प्राचीन कवि-चरित्र और काव्य, आधुनिक काल में से प्रेमचन्द, प्रसाद, राहुल सांस्कृत्यायन, जैनेन्द्रकुमार, 'अज्ञेय' आदि की कहानियाँ और उपन्यास—'प्रेमचन्दाच्या गोष्टी' (दो भाग) आनन्दराव जोशी ने अनूदित किया है, राहुल जी के 'वोल्गा से गंगा', 'जय यौधेय' और 'सिंह सेनापति' स० अ० मोडक और व्यंकटेश वकील ने, जैनेन्द्रकुमार का 'त्यागपत्र' अ० म० जोशी ने और मैंने। 'अज्ञेय' की कुछ कहानियाँ अनूदित-प्रकाशित की गई हैं। कवियों में मैथिली-शरण गुप्त, पन्त, महादेवी, 'निराला', बच्चन की कुछ रचनाएँ मराठी

में अनूदित हुई हैं। 'अश्क', रामकुमार वर्मा तथा कृशनचन्दर के कुछ एकाकी भी अनूदित हुए हैं। हिन्दी से मराठी में कोष भी है। हिन्दुस्तानी कोश भी प्रकाशित हुआ है। हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू के स्वय-शिक्षक तो अनेक हैं। हिन्दी-प्रचार का सबसे अधिक कार्य महाराष्ट्र में ही हुआ है। परन्तु वह सब पर्याप्त नहीं है। यह अनुवाद-कार्य बड़े पैमाने पर और व्यवस्थित रूप से होना चाहिए। अनुवादकों में य. ना मोघे, रा. र सर्वटे, यशवत तेंदुलकर, र श केलकर, परदेशी आदि मराठी भाषी और रामचन्द्र वर्मा, शकरदेव विद्यालकार, अवधनारायण आदि हिन्दी-भाषी भी हैं।

भारत की स्वतन्त्रता और हिन्दी के राष्ट्रभाषा घोषित होने के पश्चात् भारत की प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का आदान-प्रदान और भी आवश्यक हो गया है। भारतीय साहित्य परिषद् के मुखपत्र 'हंस' ने सन् १९३४ ई० में और बाद में 'भारतीय सस्कृति' पत्रिका ने यह कार्य किया है, तथा 'राष्ट्र-भारती', 'दक्षिण भारती' आदि पत्रिकाएँ अभी भी कुछ अंशों मे यह कार्य कर रही हैं, परन्तु इतने से सन्तोष कर लेना काफी नहीं है। आवश्यकता है एक केन्द्रीय साहित्य-निर्माण-योजना की, जिसमें भारत की सभी हिन्दीतर भाषाओं के कोष-व्याकरण-स्वयशिक्षक; तथा उत्तमोत्तम ग्रन्थों के अनुवाद हिन्दी मे और इसी प्रकार हिन्दी से उन-उन भाषाओं में प्रकाशित किये जायॅ, शीघ्र और व्यापक प्रमाण पर।



विजयाप्रिय दक्षिणी पंडितों का व्यंग्य-चित्र खींचा है। इस अकेले हिन्दी नाटक में तीन-चार पृष्ठ मराठी भाषा दी गई है। वैसे आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी की गद्य-शैली पर तथा माखनलाल चतुर्वेदी की कविता पर मराठी साहित्य की छाया और प्रभाव है।

इससे उलटे मराठी में हिन्दी-साहित्य से अनुवाद भी मिलते हैं और स्वतन्त्र मौलिक रचनाएँ करने वाले कई मराठी-भाषी लेखक भी हैं, जिनमें से तीन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति भी रह चुके हैं : स्व० माधवराव सप्रे, स्व० सयाजीराव गायकवाड, स्व० बाबूराव विष्णु पराडकर। और वे मराठी-भाषी, जो हिन्दी में लिखते हैं उनमें से कुछ नाम ये हैं : पंडित सातवलेकर, लक्ष्मण नारायण गर्दे, सरदार माधवराव किबे, कमलाबाई किबे, गोपाल दामोदर तामस्कर, डॉक्टर हरि रामचन्द्र दिवेकर, अनन्त सदाशिव अलतेकर, श्रीधर व्यंकटेश पुणतांबेकर, काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, विनोबा भावे, वामन चोरघड़े, ग० रा० वैशम्पायन, जोगलेकर, दत्ता वामन पोतदार, रा० र० खाडिलकर, भास्कर रामचन्द्र भालेराव आदि पुरानी पीढ़ी के लेखक हैं। नये लेखकों में श्रीपाद जोशी, अनन्त गोपाल शेवड़े, महादेव सीताराम करमरकर, नारायण शामराव चिताम्बरे, गजानन माधव मुक्तिबोध, मैनावती माटे, तारा पोतदार आदि।

इन लेखकों के अतिरिक्त हिन्दी से मराठी में जो साहित्य अनूदित हुआ है, वह इस प्रकार से है : तुलसी रामायण और कबीर के पद, नानक, मीरा की जीवनी जैसे प्राचीन कवि-चरित्र और काव्य, आधुनिक काल में से प्रेमचन्द, प्रसाद, राहुल सांस्कृत्यायन, जैनेन्द्रकुमार, 'अज्ञेय' आदि की कहानियाँ और उपन्यास—'प्रेमचन्दाच्या गोष्टी' (दो भाग) आनन्दराव जोशी ने अनूदित किया है, राहुल जी के 'वोल्गा से गंगा', 'जय यौधेय' और 'सिंह सेनापति' स० अ० मोडक और व्यंकटेश वकील ने, जैनेन्द्रकुमार का 'त्यागपत्र' अ० म० जोशी ने और मैंने। 'अज्ञेय' की कुछ कहानियाँ अनूदित-प्रकाशित की गई हैं। कवियों में मैथिली-शरण गुप्त, पन्त, महादेवी, 'निराला', बच्चन की कुछ रचनाएँ मराठी

में अनूदित हुई हैं। 'अश्क', रामकुमार वर्मा तथा कृशनचन्दर के कुछ एकांकी भी अनूदित हुए हैं। हिन्दी से मराठी में कोष भी है। हिन्दुस्तानी कोश भी प्रकाशित हुआ है। हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू के स्वय-शिक्षक तो अनेक हैं। हिन्दी-प्रचार का सबसे अधिक कार्य महाराष्ट्र में ही हुआ है। परन्तु वह सब पर्याप्त नहीं है। यह अनुवाद-कार्य बड़े पैमाने पर और व्यवस्थित रूप से होना चाहिए। अनुवादकों में य ना मोघे, रा र सर्वटे, यशवंत तेंदुलकर, र शं केलकर, परदेशी आदि मराठी भाषी और रामचन्द्र वर्मा, शंकरदेव विद्यालंकार, अवधनारायण आदि हिन्दी-भाषी भी हैं।

भारत की स्वतन्त्रता और हिन्दी के राष्ट्रभाषा घोषित होने के पश्चात् भारत की प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का आदान-प्रदान और भी आवश्यक हो गया है। भारतीय साहित्य परिषद् के मुखपत्र 'हंस' ने सन् १९३४ ई० मे और बाद में 'भारतीय संस्कृति' पत्रिका ने यह कार्य किया है, तथा 'राष्ट्र-भारती', 'दक्षिण भारती' आदि पत्रिकाएँ अभी भी कुछ अंशों में यह कार्य कर रही हैं, परन्तु इतने से सन्तोष कर लेना काफी नहीं है। आवश्यकता है एक केन्द्रीय साहित्य-निर्माण-योजना की, जिसमें भारत की सभी हिन्दीतर भाषाओं के कोष-व्याकरण-स्वयंशिक्षक, तथा उत्तमोत्तम ग्रन्थों के अनुवाद हिन्दी मे और इसी प्रकार हिन्दी से उन-उन भाषाओं मे प्रकाशित किये जायँ, शीघ्र और व्यापक प्रमाण पर।

विजयाप्रिय दक्षिणी पंडितों का व्यंग्य-चित्र खींचा है। इस अकेले हिन्दी नाटक में तीन-चार पृष्ठ मराठी भाषा दी गई है। वैसे आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी की गद्य-शैली पर तथा माखनलाल चतुर्वेदी की कविता पर मराठी साहित्य की छाया और प्रभाव है।

इसके उलटे मराठी में हिन्दी-साहित्य से अनुवाद भी मिलते हैं और स्वतन्त्र मौलिक रचनाएँ करने वाले कई मराठी-भाषी लेखक भी हैं, जिनमें से तीन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति भी रह चुके हैं: स्व० माधवराव सप्रे, स्व० सयाजीराव गायकवाड, स्व० बाबूराव विष्णु पराडकर। और वे मराठी-भाषी, जो हिन्दी में लिखते हैं उनमें से कुछ नाम ये हैं: पंडित सातवलेकर, लक्ष्मण नारायण गर्दे, सरदार माधवराव किबे, कमलाबाई किबे, गोपाल दामोदर तामस्कर, डॉक्टर हरि रामचन्द्र दिवेकर, अनन्त सदाशिव अलतेकर, श्रीधर व्यंकटेश पुणतांबेकर, काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, विनोबा भावे, वामन चोरघडे, ग० रा० वैशम्पायन, जोगलेकर, दत्ता वामन पोतदार, रा० र० खाडिलकर, भास्कर रामचन्द्र भालेराव आदि पुरानी पीढ़ी के लेखक हैं। नये लेखकों में श्रीपाद जोशी, अनन्त गोपाल शेवडे, महादेव सीताराम करमरकर, नारायण शामराव चितामबरे, गजानन माधव मुक्तिबोध, मैनावती माटे, तारा पोतदार आदि।

इन लेखकों के अतिरिक्त हिन्दी से मराठी में जो साहित्य अनूदित हुआ है, वह इस प्रकार से है: तुलसी रामायण और कबीर के पद, नानक, मीरा की जीवनी जैसे प्राचीन कवि-चरित्र और काव्य, आधुनिक काल में से प्रेमचन्द, प्रसाद, राहुल सांस्कृत्यायन, जैनेन्द्रकुमार, 'अज्ञेय' आदि की कहानियाँ और उपन्यास—'प्रेमचन्दाच्या गोष्टी' (दो भाग) आनन्दराव जोशी ने अनूदित किया है, राहुल जी के 'वोल्गा से गंगा', 'जय यौधेय' और 'सिंह सेनापति' स० अ० मोडक और व्यंकटेश वकील ने, जैनेन्द्रकुमार का 'त्यागपत्र' अ० म० जोशी ने और मैंने। 'अज्ञेय' की कुछ कहानियाँ अनूदित-प्रकाशित की गई हैं। कवियों में मैथिली-शरण गुप्त, पन्त, महादेवी, 'निराला', बच्चन की कुछ रचनाएँ मराठी

अध्ययन-सामग्री

१. महाराष्ट्र-सारस्वत भावे
२. महाराष्ट्र-ग्रन्थ-प्रदीप . पागारकर
३. महानुभावांचा आचार धर्म डॉ० वि० भि० कोलते
४. महानुभावांचे तत्त्वज्ञान ,,
५ ज्ञानेश्वरीचे तत्त्वज्ञान डॉ० श० दा० पेंडसे
६. अर्वाचीन मराठी साहित्य वि० स० सरवटे
७ मराठी साहित्याचा इतिहास डॉ० वि० पा० दांडेकर
८ मराठी वाङ्मय (खण्ड १-२) प्रो० अ० ना० देशपांडे
९. माडर्न मराठी लिटरेचर (अंग्रेजी में) · गो० चि० भाटे
१०. ज्ञानेश्वर न० र० फाटक
११ एकनाथ ,
१२. रामदास . ,,
१३. मराठी साहित्य का इतिहास (हिन्दी में) .
कृष्णलाल शरबोदे 'हंस'
१४. मराठी साहित्य (हिन्दी में) प्रो० गोडबोले
१५. संत तुकाराम . डॉ० ह० रा० दिवेकर
१६. मराठी संतों का सामाजिक कार्य (हिन्दी में) :
डॉ० वि० भि० कोलते
१७. माडर्न मराठी शार्ट स्टोरीज् (अंग्रेजी में)
संपादक : मा० कृ० शिंदे
१८. मराठी व्युत्पत्ति कोश · कृ० पा० कुलकर्णी
१९. महाराष्ट्र ज्ञानकोश : डॉ० श्री व्य० केतकर
२०. महाराष्ट्र शब्दकोश य० रा० दाते

अध्ययन-सामग्री

१. महाराष्ट्र-सारस्वत . भावे
२. महाराष्ट्र-ग्रन्थ-प्रदीप पागारकर
३. महानुभावाचा आचार धर्म डॉ० वि० भि० कोलते
४. महानुभावांचे तत्त्वज्ञान . ,,
५ ज्ञानेश्वरीचे तत्त्वज्ञान डॉ० श० दा० पेंडसे
६. अर्वाचीन मराठी साहित्य वि० स० सरवटे
७ मराठी साहित्याचा इतिहास · डॉ० वि० पा० दांडेकर
८. मराठी वाङ्मय (खण्ड १-२) प्रो० अ० ना० देशपांडे
९. माडर्न मराठी लिटरेचर (अंग्रेजी में) गो० चि० भाटे
१०. ज्ञानेश्वर न० र० फाटक
११ एकनाथ ,,
१२. रामदास ,,
१३. मराठी साहित्य का इतिहास (हिन्दी में)
कृष्णलाल शरसोदे 'हंस'
१४. मराठी साहित्य (हिन्दी में) प्रो० गोडबोले
१५ संत तुकाराम : डॉ० इ० रा० ढवळे
१६. मराठी संतों का सामाजिक कार्य (हिन्दी में) ·
डॉ० वि० भि० कोलते
१७ माडर्न मराठी शार्ट स्टोरीज़ (अंग्रेजी में) .
संपादक : मा० कृ० शिंदे
१८ मराठी व्युत्पत्ति कोश कृ० पा० कुलकर्णी
१९ महाराष्ट्र ज्ञानकोश · डॉ० श्री व्य० केतकर
२०. महाराष्ट्र शब्दकोश य० रा० दाते